RNI No. : RAJHIN/2012//50791
ISSN : 2278-6392

शिक्षा की बुनियाद

हिंदी त्रैमासिक | वर्ष : 3 | अंक : 10 | 11 अक्टूबर, 2014 | उदयपुर | ₹ 200(वार्षिक)

विद्या भवन सोसायटी

Azim Premji University

वे सदा हमारे साथ रहेंगे...

डॉ. हृदय कांत दीवान 30 सितम्बर 2014 को औपचारिक रूप से विद्या भवन से सेवानिवृत्त हो गए हैं। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से भौतिक शास्त्र में पीएच.डी. करने के बाद मध्यप्रदेश की शैक्षिक संस्था 'एकलव्य' से जुड़कर लगभग 15 वर्षों तक स्कूली शिक्षा के अनेक पहलुओं पर कार्य किया। इसके पश्चात आपने विद्या भवन में व्यवस्था सचिव के नाते काम संभाला। बाद में आप संस्था के शिक्षा सलाहकार बने। विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र की स्थापना में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा है। विद्या भवन के प्रकाशनों में आपकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। शिक्षा में नवाचार और शोध के क्षेत्र में आप निरंतर महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं और आज भी सक्रिय हैं। 'हार्डी' के नाम से मशहूर डॉ. हृदय कांत दीवान शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले, देशभर की एक पूरी पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत और मागदर्शक साथी के रूप में सदा हमारे साथ होंगे।

डॉ. (श्रीमती) विश्व विजया सिंह एम.ए., एम.एड. और शिक्षा में पीएच.डी. हैं। आप 1970 से 2004 तक विद्या भवन स्कूल से जुड़ी रहीं। अध्यापक से आरंभ करके आपने नर्सरी एवं जूनियर स्कूल की प्रधानाध्यापिका पद की जिम्मेदारी भी संभाली। 2001 से 2014 तक सेफ्टी कंसर्न सेंटर के समन्वयक के दायित्व के साथ-साथ, सेंटर की पत्रिका 'दो टूक बात' के नौ अंकों का संपादन भी किया। विद्या भवन विद्या बंधु संघ की वार्षिक पत्रिका 'मुख-पत्र' की 11 वर्षों तक संपादक रहीं। आपने स्कूल की पत्रिका 'गुंजन' का भी संपादन किया। न्यूजलेटर 'खोज-खबर' के संपादन मंडल की 11 वर्षों तक सदस्य रहीं। 'खोज-बीन' में सह-संपादक तथा 'बुनियादी शिक्षा' की संपादकीय टीम में सदस्य रहीं। 'खोजें और जानें' में आप संपादन टीम की सदस्य रहीं हैं। देश की प्रतिष्ठित शैक्षिक पत्रिकाओं में आपके शैक्षिक आलेख प्रकाशित होते रहे हैं। 30 जून, 2014 को औपचारिक रूप से आप विद्या भवन से सेवानिवृत्त हो गई हैं। विदुषी के रूप में आपकी स्मृति सदैव हमारे बीच रहेगी।

श्री भागचंद्र कुमावत 38 वर्षों की लम्बी सेवा के बाद 30 जून 2014 को विद्या भवन से सेवानिवृत्त हो गए। आपने एम.ए., एम.एड. तक शिक्षा प्राप्त की। आपने लगभग 30 वर्षों तक विद्या भवन के बुनियादी स्कूल में अध्यापन किया। उसके बाद विद्या भवन के प्रकाशन विभाग से जुड़े। आपने विद्या भवन की शैक्षिक पत्रिकाओं 'बुनियादी शिक्षा' तथा 'खोज-बीन' की शुरूआत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भागचंद्र जी ने 'खोजें और जानें' के समन्वयक एवं 'शिक्षा की बुनियाद' के संपादक के दायित्व को भी बखूबी निभाया। विद्या भवन बेसिक स्कूल में बुनियादी तालीम और विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप हंसमुख एवं मिलनसार सहकर्मी के रूप में हमेशा याद आते रहेंगे।

'शिक्षा की बुनियाद' आप सबके अतुलनीय योगदान के लिए आभारी है।

शिक्षा की बुनियाद

हिंदी त्रैमासिक | वर्ष : 3 | अंक : 10 | 11 अक्टूबर, 2014

इस अंक में...

2 संपादकीय
✧ संपादन साथी

3 भारत को एक नई शिक्षक...
✧ अनुराग बेहार

6 अध्यापक शिक्षा के सरोकार
✧ सुदर्शन अय्यंगार

19 अवलोकन : पढ़ना सीखने के
✧ प्रमोद मैथिल

24 पोस्ट बेसिक के अनुभव
✧ मॉर्जरी सॉइक्स

29 मिस आऊनोस् न्
✧ स्निग्धा दास

34 रचनात्मकता : बच्चों का अधिकार
✧ नरेन्द्र 'नंद'

39 पुस्तकालय प्रशिक्षण ऐसा भी...
✧ उषा पानेरी

43 परीक्षा लो और बच्चों को बाहर करो
✧ फ़ैज कुरैसी

46 जरूरत है हुनरमंद शिक्षक की
✧ पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

आवरण छायाचित्र : मोहन लाल जाट

परामर्श–प्रबंधन
हृदय कांत दीवान ☆ एस. गिरिधर ☆ रामगोपाल वल्लत

कवर एवं ले–आउट
इसरार अहमद ☆ मो. इकराम

समन्वयक
लक्ष्मी लाल वैरागी

संपादक
आदेश कुमार सिंह

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

टाइपिंग सहयोग
शाकिर अहमद

संपादक मंडल
गुरबचन सिंह ☆ के. आर. शर्मा
कमलेश जोशी ☆ गिरीश शर्मा
रजनी द्विवेदी ☆ कामिनी उपाध्याय

वितरण
आशुतोष रावत ✆ 07597824531
निशांत कुमावत ✆ 09950912525
publication.vbs@gmail.com

यह अंक : ₹50.00
वार्षिक (व्यक्तिगत) : ₹200.00 (चार अंकों के लिए)
वार्षिक (संस्थागत) : ₹400.00 (चार अंकों के लिए)
डाक या कूरियर व्यय हम वहन करेंगे।
(कृपया चेक, बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर
'विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर' के नाम से भेजें।)

पत्र-व्यवहार के लिए पता
'शिक्षा की बुनियाद'
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र,
वि. भ. सोसायटी परिसर, मोहन सिंह मेहता मार्ग,
फतहपुरा, उदयपुर (राज.) – 313001
फोन : 0294–2451497
email : *vbs.skb@gmail.com*

विद्या भवन सोसायटी और अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी का संयुक्त प्रकाशन

संपादकीय

शिक्षा की बुनियाद का यह अंक व्यवस्थागत कारणों से थोड़ी देर से आपके हाथ में है। 'शिक्षा की बुनियाद' के नये रूप में आने के बाद से ही लगातार हमारी यह कोशिश रही है कि शिक्षा के क्षेत्र में जमीनी स्तर के कामों और समसामयिक बहसों एवं नीतिगत विमर्शों को बढ़ावा दें। हमने अब तक स्कूल तो बहुत खोले मगर शिक्षा की गुणवत्ता का प्रश्न अभी भी खड़ा है। शिक्षा में गुणवत्ता का एक पहलू है शिक्षक शिक्षा को बेहतर बनाना। अगर शिक्षक शिक्षा को हम बेहतर कर पाते हैं तो जमीनी स्तर पर इसके सार्थक प्रभाव देखने को जरूर मिलेंगे। यह एक चुनौतीपूर्ण व लम्बी प्रक्रिया है। इस समय शिक्षा के क्षेत्र में निराशा का माहौल छाया हुआ है। पर ऐसा नहीं है कि सरकारी स्कूलों में सीखना–सिखाना नहीं हो रहा है। बल्कि विगत प्रयासों से सकारात्मक पहलू भी दिखाई पड़ रहा है। यही हालात शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में भी है वहां पर भी सकारात्मक बदलाव के प्रयास दिखाई पड़ रहे हैं। जरूरत इस बात की हैं कि इन प्रयासों से सबक लेते हुए अपने प्रयासों को गति दी जाए।

इस अंक की संकल्पना में हमारी कोशिश कुछ इसी तरह की रही है कि चुनौतियों के साथ साथ सकारात्मक बदलाव के प्रयास भी सामने आएं। अनुराग बेहार अपने लेख में सवाल उठाते हैं कि एक शिक्षक बनने के लिए क्या आवश्यक है। वे इस लेख में शिक्षक शिक्षा में को बेहतर बनाने की बात करते हैं। इसी कड़ी में गूजरात विद्यापीठ के कुलनायक अध्यापक शिक्षा के सुदर्शन अय्यंगार शिक्षक शिक्षा के माध्यम से पेशेवर और मानवीय शिक्षक तैयार करने की ओर इशारा करते हैं।छोटी कक्षाओं में बच्चों को वर्णमाला केन्द्रित शिक्षा के बजाए 'पढ़ना' सीखने की प्रक्रिया में श्शामिल करने के अपने अनुभवों में पर प्रमोद मैथिल रोशनी डालते हैं।

'नई तालीम कहानी' से मर्जरी साइक्स कहतीं हैं कि ''जब आप सोचना शुरू करते हैं तभी आप सीखते हैं।'' इसी अंक में स्निग्धा दास की मिस आऊनोस् एक मार्मिक अनुभूति है जो हमें अपने शिक्षकीय दायित्वों पर सोचने को मजबूर करती है। परीक्षा लो और बच्चों को बाहर करो का आलेख सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का आकलन करता है। पं गुणसागर सत्यार्थी का आलेख जरूरत है हुनरमंद शिक्षकों की में लेखक शिक्षक क्षमता संवर्द्धन की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं व विकल्प भी प्रस्तुत करते हैं।

साथियों, पत्रिका के लिये आपके आलेखों, रिपोर्टों, सुझावों व विचारों का हमें इंतजार रहेगा।

संपादन साथी

भारत को एक नई शिक्षक

शिक्षा प्रणाली की जरूरत है

✧ अनुराग बेहार

भारत में शिक्षक–शिक्षा की जिस तरह की प्रणाली है वह हम जिस प्रकार की शिक्षा चाहते हैं उससे पूरी तरह से जुदा है।

एक शिक्षक बनने के लिए क्या आवश्यक है और इसी प्रकार से कैसे किसी को शिक्षक बनाया जा सकता है? स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में यह सवाल काफी अहम सवालों में से एक बना हुआ है।

पिछली सदी में शिक्षा को लेकर पूरी दुनिया के नीति–निर्धारकों और जनसामान्य के विचार विकसित हुए हैं। अगर मोटे तौर पर कहें तो स्कूली शिक्षा को लेकर इसके उद्देश्यों के दायरे में, एक व्यक्ति और समाज के विकास में ये विचार ज्यादा समावेशी, व्यापक और महत्वाकांक्षी हुए हैं। शिक्षा न केवल कुछ विशेष सुविधा वाले बच्चों के लिए बल्कि सभी बच्चों के अधिकार के रूप में देखा जा रहा है। बाल विकास और शिक्षा पर सामाजिक प्रक्रियाओं के जटिल प्रभाव की समझ भी विकसित हुई है। अधिकांश विषयों में ज्ञानाधार बढ़ने के साथ–साथ इन संकायों की तासीर में काफी बदलाव भी हुए हैं। संक्षेप में, शिक्षा अपने उद्देश्यों, विधियों और विषय–वस्तु में काफी समृद्ध हुई है। सही मायनों में इस समृद्ध शिक्षा के बुनियादी से लेकर उत्कृष्ट पहलुओं को कक्षाओं में प्रत्येक बच्चे तक शिक्षक के द्वारा पहुंचना है।

आइए, शिक्षकों से की जाने वाली कुछ अपेक्षाओं

के दृष्टांत देखते हैं। एक आम शिक्षक विभिन्न उम्र वाले बच्चों के समूह को संभालेगा। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित परिवारों से हैं जिनके घरों में शिक्षा का कोई माहौल ही नहीं हैं जहां उन्हें पढ़ने–लिखने का मौका मिले। शिक्षक को स्कूल में इन विद्यार्थियों को समझकर पढ़ाना, गणित को संदर्भों व वास्तविक जीवन से जोड़कर और विज्ञान को उनके पर्यावरण से जोड़कर पढ़ाना ही है। इस प्रकार के सीखने में अवधारणात्मक स्पष्टता, तर्क करने की क्षमता और स्वतंत्र ढंग से सोच पाना शामिल है। हम शिक्षा से यह भी चाहते हैं कि बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्य विकसित हो। हकीकत यह कि सीखने–सिखाने के मूल में इंसानी रिश्ते हैं। अपेक्षा यह है कि एक शिक्षक में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में उच्च स्तर के सामाजिक व भावानात्मक पहलुओं को शामिल करने की क्षमता हो। बहरहाल, यह काफी लंबी बात है। अभी के लिए इसे यहां रोकते हैं क्योंकि इस बात से यह तो समझ में आता है कि शिक्षक की भूमिका काफी जटिल और विस्तार लिए हुए है।

भारत में इस प्रकार की समृद्ध शिक्षा को प्राथमिक स्कूलों की कक्षाओं में स्थापित करने के लिए जिस व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है उसे बारहवीं कक्षा पास करके दो साल के शिक्षक–शिक्षा के प्रशिक्षण से गुजरना होता है। ऐसा माना जाता है कि इन दो सालों में अध्यापक शिक्षा का कोर्स करके वे शिक्षक बन जाएंगे। उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए स्नातक की डिग्री लेने के बाद 10 माह का कोर्स होता है।

इन दोनों यानि कि शिक्षक–शिक्षा के कमजोर डिजाइन व इसके क्रियान्वयन जो कि बदतर है पर संक्षेप में एक नजर डालते हैं। लेकिन इससे भी पहले एक और बात पर कि शिक्षक की तैयारी के डिजाइन और हम जिस प्रकार की शिक्षा के बारे में सोचते हैं उनका आपस में कोई तालमेल ही नहीं है।

जरा सोचिए, एक 18 साल की आपकी बेटी या बेटे के बारे में या किसी और युवा के बारे में जो दो साल के प्रशिक्षण के बाद शिक्षक की भूमिका निभाने वाला है। यह बात आपको चौंका देने वाली

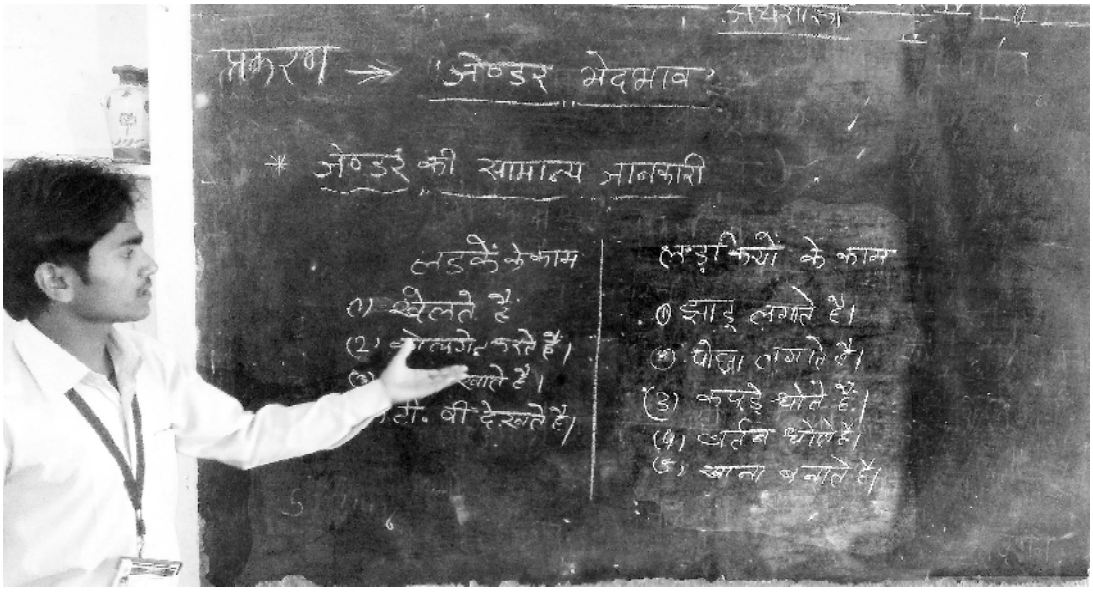

होगी कि न केवल दो साल का प्रशिक्षण विषय की सामग्री को कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाने, शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण व बाल विकास के प्रासंगिक मसले इत्यादि की समझ के लिए काफी कम है अपितु बारहवीं पास करने के बाद प्रशिक्षण प्राप्त करके जो शिक्षक बनने जा रहे हैं इस उम्र के युवा लोगों में जरूरी सामाजिक परिपक्वता भी नहीं होती है।

आप एक अन्य उदाहरण से भी इस मामले को जोड़ कर देख सकते हैं। सोचिए कि अगर इंजीनियरिंग की शिक्षा कुछ ऐसी होती जिसमें 12वीं के बाद विद्यार्थी को दो साल के कार्यक्रम से गुजरना होता और वह इंजीनियरिंग के लिए योग्य हो जाता। इन इंजीनियरों से हम क्या यह अपेक्षा करेंगे कि वे इंजीनियरिंग के बुनियादी या कि मौलिक कार्य जैसे कि चिप डिजाइन, उपकरणों, ऑटोमोबाईल पर कार्य कर सके। यह बिल्कुल साफ है कि वे देश में इंजीनियरिंग उद्योग के साथ क्या करेंगे। एक शिक्षक का पेशा इंजीनियर से कहीं ज्यादा जटिल है यद्यपि विभिन्न कारणों से शिक्षक को वेतन कम ही मिलता है।

भला फिर क्यों शिक्षक–शिक्षा का ढांचा ऐसा बनाया गया जो जाहिर तौर पर जैसी शिक्षा हम चाहते हैं उससे अलग–थलग है? इसकी कई वजहें हैं– एक बुनियादी वजह बिना देखे–परखे, शायद हमारी यह साझी गलतफहमी है कि "हर कोई पढ़ा सकता है।" अधिक सीधा–सीधा कारण यह है कि शिक्षा को लेकर वैचारिक बदलावों को शिक्षक–शिक्षा अपने डिजाइन में उस गति से स्थापित नहीं कर पा रहा है।

अधिकांश देशों में जहां बेहतर स्कूली तंत्र है वहां शिक्षकों को तैयार करने के लिए हमारे देश के एक या दो वर्ष के बनिस्पत चार से पांच वर्ष का कार्यक्रम होता है। एक बात पर और गौर फरमाएं कि प्रशिक्षण की अवधि तो एक पहलू है ही इसकी कमजोरी का। शिक्षक–शिक्षा का संपूर्ण पाठ्यक्रम और इसका संस्थागत ढांचा दोनों ही पुरातन है।

इन कमजोर कार्यक्रमों का क्रियांवयन और भी बदतर है। 16 हजार से भी ज्यादा फालतू के शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय हैं जो धन कमाने में लगे हुए हैं और शिक्षा की डिग्री बेचते हैं। इनकी शिक्षा में कोई दिलचस्पी नहीं है। हमारी शिक्षक–शिक्षा प्रणाली में इस घोटाले ने जो कि पिछले 20 वर्षों से चल रहा है अब तक के बड़े से बड़े घोटाले को भी शर्मसार कर दिया है।

पिछले दो वर्षों में सुप्रीम कोर्ट ने जस्टिस वर्मा आयोग नियुक्त किया। शुरुआत इससे की गई कि स्कूली तंत्र की लगभग जीर्ण–शीर्ण, अस्तित्वहीन हो चुकी नींव पर फिर से नजर डाली जाए। जस्टिस वर्मा आयोग ने जो सिफारिशें की हैं वे पहले कईयों ने की थी मगर उनका कोई असर नहीं हुआ। जरूरत है राजनीतिक इच्छा शक्ति की जो इन सिफारिशों को हकीकत में अमल में ला सके, जड़ता और निष्क्रियता, निहित व्यावसायिक हितों का सामना कर सके और शिक्षक–शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक व्यय में इजाफा हो सके।

जब तक हम शिक्षक–शिक्षा का नया ढांचा नहीं बनाते हमारे स्कूलों में सुधार होने वाला नहीं है। शिक्षक–शिक्षा में ज्यादातर चीजें जो कर रहे हैं वह कुछ इस तरह से है जैसे बीमारी के लक्षणों को पहचानना जबकि हम उस जानलेवा संक्रमण की उपेक्षा कर रहे हैं जो खतरनाक तरीके से फैल रहा है।

भाषानुवाद : के. आर. शर्मा, यशवेंद्र सिंह रावत, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में कार्यरत।

अध्यापक शिक्षा के सरोकार

✧ सुदर्शन अय्यंगार

विद्या भवन गोविन्द राम सेकसरिया शिक्षक महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य पी.एल. श्रीमाली की स्मृति में प्रतिवर्ष एक व्याख्यान आयोजित किया जाता हैं जिसमें देश के ख्यातिनाम शिक्षाविदों को आमंत्रित किया जाता है। इस वर्ष 26 अप्रैल 2014 को आयोजित व्याख्यानमाला में गूजरात विद्यापीठ विश्वविद्यालय के कुलनायक प्रो. सुदर्शन अय्यंगार का व्याख्यान हुआ। प्रस्तुत है अध्यापक शिक्षा के सरोकार पर उनके विचार...

आज की इस व्याख्यानमाला के प्रसंग पर उपस्थित सभा के अध्यक्ष आदरणीय रियाज़ जी, शर्मा जी, अशोक भाई, स्नातक परिषद् के पदाधिकारी सदस्य, भाईयो–बहनो, सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण विद्यार्थियो!

दरअसल आज मुझे यहां आकर बहुत अच्छा लग रहा है। मैं यहां पहले भी दो बार आ चुका हूं। यहां आकर अच्छा इसलिए लगता है कि यहां शिक्षा के बारे में एक गंभीर, शिक्षा–विमर्श व चिंतन होता रहता है। इस 'पी.एल. श्रीमाली व्याख्यानमाला' की कड़ी में मैं क्या करूंगा, ये पता नहीं है। आपने मेरे परिचय में देख लिया होगा। कहीं ये नहीं लिखा हुआ है कि मैं किसी शिक्षक महाविद्यालय में पढ़ाता हूं, प्रिंसीपल हूं। ऐसा कुछ भी नहीं हूं। गूजरात विद्यापीठ का कुलनायक बना क्योंकि यह एक शिक्षक महाविद्यालय है, एक शिक्षक महाविद्यालय में शिक्षकों से बातचीत होती रहती है और कभी–कभी उनकी यह अपेक्षा होती है कि आप कुलनायक हैं। इसलिए कुछ करें, तो उससे कुछ समझ बनी है। दूसरी बात यह है कि मोहन दास करमचंद गांधी एक व्यापारी, जिसने कोई काम नहीं छोड़ा, शिक्षा को भी नहीं छोड़ा और ऐसा नहीं कि सिर्फ विचार प्रकट किए। पहले तो टीचर बन के दिखाया, बच्चों के साथ फंस गया, दक्षिण अफ्रीका ले गया अपने बच्चों को। वहां उसके अंदर इच्छा जागृत हुई, कि मैं अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के इन स्कूलों में नहीं पढ़ा सकता हूं, और कोई स्कूल है नहीं, क्या किया जाए? तो उन्होंने कहा मैं पढाऊंगा। अब उसके पास समय तो था नहीं! उसने लोगों को जोड़ा और साथ में एक परिवार के तौर पर परिवार के बच्चों का शिक्षक हुआ और उससे काफी चीजें सीखी। इसीलिए शिक्षा के क्षेत्र में भी मोहन दास करमचंद गांधी की पैनी दखल है। इसके चलते गांधीजी के विचारों को जानने की जब कोशिश होती है तो उसकी शिक्षा को भी समझना पड़ता है, पढ़ना पड़ता है। इसीलिए मैंने कहा कि मैं शायद अध्यापक शिक्षा के बारे में थोड़ी बात करूंगा। मैं अपनी समझ रखने वाला हूं। हो सकता है कि ये बहुत पहले से ही आप लोगों को पता हो क्योंकि आप इस क्षेत्र में हैं। हां, विद्यार्थियों के लिए शायद कुछ नई बात हो सकती है और यह भी हो सकता है कि वे कहें कि ये कर क्या रहा है। तो ये देखेंगे बाद में।

यह व्याख्यान मैं इस भूमिका के साथ करना चाहता हूं कि आज के यांत्रिक युग में किसी भी क्षेत्र

में प्रश्नों का हल यंत्राधारित तंत्रमूलक उपायों में ढूंढा जाने लगा है। वैसे ये समयोचित तो हो सकता है पर कालजयी नहीं है क्योंकि यंत्राधारित तंत्रमूलक उपाय उन प्रश्नों का जवाब नहीं ढूंढ पाते, जो व्यक्ति के मानस से जुड़े हैं। स्वस्थ समाज की निर्माण प्रक्रिया में जो भी सम्पोषितता हो। मैंने 'सम्पोषित' शब्द का प्रयोग सतत व टिकाऊ विकास की अपनी बात रखने के लिए किया है। मैं उस शब्द का अर्थ परस्पर पोषण करने वाला मानता हूं और स्वस्थ समाज में प्रकृति और मनुष्य के संबंध में परस्पर पोषण करना बहुत जरूरी है। ऐसी समझ से उस स्वस्थ समाज के निर्माण की प्रक्रिया में, जो सम्पोषित हो, व्यक्ति का मानस स्वस्थ हो, यह आवश्यक शर्त है। स्वस्थ समाज की व्याख्याएं अलग–अलग हो सकती हैं परंतु मैं गांधीजी द्वारा प्रस्थापित अहिंसक समाज को आदर्श मानकर चल रहा हूं। जो व्यक्ति, समष्टि और प्रकृति तीनों के बीच संवाद कायम करने की क्षमता रखता है। ऐसे दर्शन और समझ से मानव–केन्द्रित प्रयास हो और शिक्षा मानस परिवर्तन के लिए हो जिससे शरीर का श्रम, यंत्र और तंत्र के साथ मिलकर संवादी समाज की संरचना में सहायक बने। ये दर्शन और समझ कहीं पीछे छूट गए हैं और इसका मूल कारण यह है कि आजादी के तुरंत बाद नए और आधुनिक भारत की जो कल्पना की गई वह गांधीजी के ग्राम स्वराज की कल्पना से मेल नहीं खाती थी।

''स्वस्थ समाज की व्याख्याएं अलग–अलग हो सकती है परंतु मैं गांधीजी द्वारा प्रस्थापित अहिंसक समाज को आदर्श मानकर चल रहा हूं। जो व्यक्ति, समष्टि और प्रकृति तीनों के बीच संवादिता कायम करने की क्षमता रखता है। ऐसे दर्शन और समझ से मानव–केन्द्रित प्रयास हो और शिक्षा मानस परिवर्तन के लिए हो जिससे शरीर का श्रम, यंत्र और तंत्र के साथ मिलकर संवादी समाज की संरचना में सहायक बने।''

इस मुद्दे को मैं आज अध्यापक शिक्षा की पहली चुनौती के रूप में प्रस्तुत करता हूं। मैंने थोड़ा सा पढ़ा है इसलिए कह सकता हूं कि गांधी बहुत आधुनिक आदमी थे जैसे–जैसे मैं बात करूंगा आपकी समझ में थोड़ा–थोड़ा आएगा, पूरी बात के लिए बैठना पड़ेगा।

अब यह क्या हो रहा है, मोहन दास करमचंद गांधी के बारे में हम लोग क्यों इतना सोच रहे हैं और क्यों कह रहा हूं कि आजादी की शुरुआत से गड़बड़ कर दी क्योंकि उस समय भी कुछ लोग थे, उन युवाओं के नेता थे– जवाहर लाल नेहरू।

जवाहर लाल नेहरू और गांधीजी की कथा कहने से पहले थोड़ा और पीछे जाना पड़ेगा और समझना पड़ेगा कि यह चुनौती सिर्फ भारत के लिए नहीं है। यह चुनौती विश्व के साथ भी खड़ी हुई है। मानव जाति के विकास की प्रक्रिया से यह जुड़ी हुई है और पुनरुत्थान के

काल से ही ये धीरे–धीरे खड़ी हुई। अंग्रेजों के भारत आकर हमें गुलाम बनाने से लेकर आजादी की लड़ाई और उसके बाद स्वतंत्र भारत देश के नवनिर्माण की कल्पनाओं के साथ जुड़ गई। जिसे हम सामान्य तौर पर मैकॉले पद्धति कहकर नकारते हैं। इसलिए थोड़ा पीछे जाना होगा।

विश्व की एक अनोखी शाला जिसकी कहानी खुद शाला के संस्थापक ने लिखी है ए.एस.नील जिनके स्कूल का नाम था 'समर हिल'। आप जानते होंगे। अभी एकलव्य भोपाल ने इसका अनुवाद करके बहुत अच्छा काम कर दिया, जो उपलब्ध है। 2004 में शायद पहला संस्करण हुआ, जिसका 2011 में पुनर्मुद्रण हुआ। इन्होंने अपनी पत्नी के साथ इस शाला की शुरुआत जर्मनी में की, इसके बाद इंग्लैंड आए और यहां के एक गांव में यह शाला चली। अभी इसकी ज्यादा बात नहीं करेंगे। इस पुस्तक में नील ने अपने 40 साल के अनुभवों को लिखा है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में एरिक फ्रॉम इस चुनौती के बारे में जिक्र करते हैं, जो हमें समझना चाहिए। वो लिखते हैं कि 18 वीं सदी के प्रगतिशील विचार– आजादी, लोकतंत्र और आत्मनिर्णय खूब फले–फूले पर 20 वीं शताब्दी के पहले ये विचार शिक्षा के क्षेत्र में फैलने लगे थे। 'सत्ता के बदले आजादी' इसका मूलमंत्र था। बच्चे बिना दबाव के अपनी सहज जिज्ञासा और स्वतः स्फूर्त विचारों को व्यक्त करें और शिक्षक उन आवश्यकताओं को समझें और उन्हें वैसे पढ़ाते हुए आसपास की दुनिया में रुचि जगा दें। इसे आधुनिक और प्रगतिशील समझा जाने लगा। हम आप में से आज भी बहुतेरे शिक्षक और संचालक इस विचार के कायल होंगे और यह बात वैज्ञानिक परिबलों की कसौटी पर भी ठीक बैठती है। परंतु इसमें मुश्किल कहां आ खड़ी हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध से पहले और बाद में इस विचार की बड़ी समीक्षा हुई, पर जैसा एरिक फ्रॉम समझाते हैं; गलती विचार में नहीं उसके अमल में है और उसका कारण बहुत गहरा है। स्वतंत्रता को

बढ़ावा देने वाले समाज में निर्णायक सत्ताधारी वर्ग सत्ता का सीधा प्रयोग नहीं करता क्योंकि वह तो परतंत्रता की ओर ले जाने वाला होगा। इसीलिए वहां परोक्ष सत्ता का आविर्भाव होता है। सत्तावान सीधे–सीधे कहता है कि तुम अधीनस्थ हो, मैं जैसा कहूं वैसा करो अन्यथा मत बोलो। परोक्ष सत्ता किसी वर्ग द्वारा परिचालित हो, ऐसा जरूरी नहीं है, वह अज्ञात स्वरूप में रहकर परिचालित होती है। आधुनिक समाज में ज्यादातर ऐसा ही हुआ है और आज भी ऐसा हो रहा है। अगर यह सुनने में कठिन लगता है तो मैं थोड़ी देर में इसे सरल करूंगा और आपको लगेगा कि ऐसा तो कुछ हो ही रहा है।

व्यक्ति इस समाज में स्वतंत्र है और उसे अपनी स्वतंत्रत अभिव्यक्त करने का मौका मिलना चाहिए ताकि उसकी सारी सृजनात्मक शक्तियां पूरी तरह से कुसुमित होकर समाज को अच्छा बनाए। वो इसका कथित उद्देश्य है पर समाज की उस व्यवस्था में हमें रोज कहा जाता है कि विशेष योग्यता नहीं लाओगे तो तुम पिछड़ जाओगे, प्रतिस्पर्धा के माहौल में तुमको ये करना है, तुम्हें प्रतियोगी परीक्षा देनी है, तुम कहां घूम रहे हो, घर में बैठ कर पढ़ाई करो। प्रतियोगी परीक्षा देनी है, तुम कहां घूम रहे हो, घर में बैठ कर पढ़ाई करो।

'एरिक फ्रॉम' कहते हैं कि आधुनिक औद्योगिक समाज की संगठनात्मक जरूरतों के कारण 19 वीं शताब्दी की प्रत्यक्ष सत्ता 20 वीं शताब्दी की अज्ञात सत्ता में बदली। पूंजी के केन्द्रीकरण ने विशाल उद्योगों को जन्म दिया। जिनकी व्यवस्था पद के क्रम में श्रेणी अफसरशाहियों के हाथ में थी। इनमें कार्मिकों के विशाल समूह एक साथ काम करते हैं। यहां प्रत्येक कार्मिक मशीन का एक पुर्जा भर होता है। 'पहिये के दांता पेच', या 'मशीन के कल–पुर्जे' ये बात बहुत चली थी और वो 'मशीन के कल–पुर्जे' की बात चार्ली चैपलिन की एक फिल्म में आई थी। ये सब पुरानी बातें हैं पर फिर भी आपको चार्ली चैपलिन की फिल्म देखनी चाहिए। यहां प्रत्येक कार्मिक मशीन का पुर्जा भर होता है। ऐसे उत्पादन संगठन में व्यक्ति प्रबंधित भी होता है और संचालित भी। इसका अर्थ आप लोगों की समझ में आया! बचपन से ही आपके मां–बाप ने कहना शुरू किया और फिल्म में गीत भी आया 'पढ़ोगे लिखोगे तो बनोगे नवाब घूमोगे–फिरोगे तो होगे खराब!, रहे पढ़ाई या लिखाई में जीरो, टाई लगाकर मानो बन गए जनाब हीरो।' ये सारी चीजें समाज में कही जाने लगी। ये इसलिए कही जाने लगी कि एक अज्ञात सत्ता काम कर रही थी। जिसने कहा कि तुम ऐसे नहीं पढ़ोगे तो फंस जाओगे, ग्रेजुएट नहीं होओगे तो तुम्हें कोई घास नहीं डालेगा तुम पोस्ट ग्रेजुएशन नहीं करोगे तो फलां नहीं होगा, तुम इंजीनियर नहीं होगे तो तुम्हारे पास स्कूटर नहीं आएगा, तुम एमबीए नहीं करोगे तो तुमको कोई नौकरी पर नहीं रखेगा, है ना ठीक! बचपन से मां–बाप तो कह ही रहे हैं। मुझे भी मेरे मां–बाप ने कहा था और मैंने भी अपने बच्चों को एकाध बार तो कह ही दिया होगा, इतना समझदार होने के बावजूद।

मैं यह कहना चाह रहा हूं कि अज्ञात सत्ता कितनी शक्तिशाली होती है। हमसे ये कहलवाती है। और दावा क्या है? इस आधुनिक और प्रगतिशील समाज का दावा यह है कि व्यक्ति इस समाज में स्वतंत्र है और उसे अपनी स्वतंत्रत अभिव्यक्त करने का मौका मिलना चाहिए ताकि उसकी सारी सृजनात्मक शक्तियां पूरी तरह से कुसुमित होकर समाज को अच्छा बनाए। वो इसका कथित उद्देश्य

है पर समाज की उस व्यवस्था में हमें रोज कहा जाता है कि विशेष योग्यता नहीं लाओगे तो तुम पिछड़ जाओगे, प्रतिस्पर्धा के माहौल में तुमको ये करना है, तुम्हें प्रतियोगी परीक्षा देनी है, तुम कहां घूम रहे हो, घर में बैठ कर पढ़ाई करो। ये सिर्फ बच्चों के साथ नहीं हो रहा है ये उत्पादन की सारी व्यवस्थाओं में भी हो रहा है। जहां सारा उत्पादन केन्द्रीकृत है और उसको चलाने के लिए प्रबंधन और संचालन हो रहा है। हम लोग समझ रहे हैं कि आज की शिक्षा भी हमें उसी ओर धकेल रही है। इस दर्शन से अपना मतभेद रखते हुए भी हम खुद उस दिशा में चलते हैं और आप लोगों को उसी दिशा में ले जाते हैं।

ये तो बात हुई उत्पादन की। उपभोग तो इससे भी गंभीर है। उपभोग के क्षेत्र में जहां कहने को व्यक्तियों को चुनाव की स्वतंत्रता है। उपभोक्ता वरीयता, उपभोक्ता प्रभुता! हम लोग अर्थशास्त्र की कक्षा में सबसे पहले ये सिखाते हैं कि उपभोक्ता जो है, भगवान है। दुकानों में भी लिखा होता है ग्राहक भगवान है, सबसे ऊंचा है; उसे वरीयता है पसंदगी की, चुनाव की स्वतंत्रता है। उसे भी ठीक इसी तरह प्रबंधित और संचालित किया जाता है; बात चाहे भोजन, वस्त्र, शराब–सिगरेट, या कोई टेलीविजन कार्यक्रम हो, हर जगह एक सशक्त सुझाव तंत्र सतत् काम करता है। इस सुझाव के दो उद्देश्य होते हैं– पहला उद्देश्य है लगातार व्यक्ति में नए–नए उत्पादों की भूख बढ़ाना, दूसरा, इस भूख को उस दिशा में मोड़ना जो कुछ लोगों के लिए सर्वाधिक फायदेमंद हो। अगर आपको लग रहा हो कि सहारा का सुब्रतो राय पकड़ा गया है, उसके मन में क्या भगवान बस गया है कि, या वो क्रिकेट का बड़ा फैन हो गया है कि सबको बूट, चप्पल, बैग सब देता रहता है। ऐसा आपको लग रहा होगा कि वाह! विराट कोहली को एक करोड़ का चेक मिल गया, मजा आ गया, चलो क्रिकेट खेलते हैं। वो चाह रहा है कि विराट कोहली जब क्रिकेट खेल रहा हो तो उस पर नजर कम और सहारा पर ज्यादा रहे। जहां तक माल बेचने की बात है तो हमें बचपन से कोई कह रहा है कि ये साबुन लगाने से गोरा हो जाओगे और सुंदर बन जाओगे। अब तक तो ये साबुन और गोरेपन का चक्कर महिलाओं तक ही सीमित था। आजकल शाहरूख खान हमको बता रहे हैं कि दूसरा लड़का जो फेयर एंड लवली लगाता है, वह शाहरूख खान से भी गोरा और अच्छा दिखता है और लड़कियां वहां भाग रही हैं।

इस सारे तंत्र को बड़ी गंभीरता से समझने की जरूरत है कि जिस स्वतंत्रता की कसमें आपको दिलाई जा रही हैं; इस आधुनिक और प्रगतिशील समाज में जिस स्वतंत्रता को आप महसूस करना चाहते हैं और कहना चाहते हैं –इट्स माइ लाइफ! बट इट इज नॉट योर लाइफ; क्योंकि हमने सब संचालित कर रखा है। आप कौनसा टूथपेस्ट इस्तेमाल करेंगे, इसको भी आप तय नहीं करते हैं, इसके लिए भी कुछ न कुछ तंत्र काम कर रहा है और वह तंत्र एक दिशा में ले जाने की कोशिश कर रहा है। कुछ थिसिस की मुश्किल है; जो थीसिस स्वतंत्रता के नाम पर शुरू हुई थी, मनुष्य को मुक्त करने के लिए, सत्ता से मुक्ति और अपनी स्वतंत्रता को सर्वोच्च बनाने के मानव के प्रयास में जो व्यवस्थागत यंत्र आधारित–तंत्र मूलक उपाय हमने ढूंढे हैं, उसमें आम आदमी छटपटा रहा है, इस चुनौती की मैं बात कर रहा हूं।

अब यहां एक बात जो मेरी जानकारी में कम है, अध्यापक शिक्षा के और अन्य शिक्षाविद् इस पर चर्चा करें कि क्या सही है और किस तरफ रहना चाहिए कि किसी समाज के अंदर शिक्षा–समाज में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल होनी चाहिए या प्राथमिक तौर पर शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके आधार पर समाज का नव निर्माण हो। इस

पर सब विद्वानों में आज मतभेद है और वे सारे विद्वान ये मानते हैं कि समाज में जो परिवर्तन होते रहते हैं, वे परिवर्तन शिक्षा से स्वतंत्र है। अपने अलग परिबलों से समाज में परिवर्तन आ रहा है। इसीलिए शिक्षा व्यवस्था को चाहिए कि उन परिवर्तनों के अनुकूल होकर अपनी पद्धतियों को, अपने कार्यक्रमों को, पाठयक्रमों को बदलते रहे। मोहन दास करमचंद गांधी मानते थे कि ये गड़बड़ है क्योंकि ऐसा करने से तो हम कहीं नहीं जाएंगे, इससे स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं होगा। हिंद स्वराज लिखने के 36 साल बाद भी आपने नव समाज के निर्माण की अपनी परिकल्पना को बदला नहीं था। 1909 में 40–45 साल के मोहन दास बूढ़े नहीं थे, दुनिया देख चुके थे, दक्षिण अफ्रीका में काफी विजय मिल चुकी थी–मोहन दास को। ये बात उनकी समझ में आ रही थी कि पश्चिमी समाज जो कि औद्योगिक, आधुनिक और प्रगतिशील समाज है उसकी कुछ बातें बड़ी भयानक हैं। सबसे बड़ी भयानकता तो उन्हें यही दिख रही थी कि उसमें तो आदमी चालित हो रहा है, कोई अज्ञात शक्ति आदमी को चालित करती है। उसकी स्वतंत्रता का सवाल ही कहां है। मोहन दास करमचंद गांधी खुद ही व्यक्ति स्वातंत्र्य के सबसे बड़े वाहक और चालक थे। क्यों, बड़ा अजीज आदमी हैं उसके बोलने से लगती क्यों है, क्योंकि वो कसमें खाते हैं कि मैं कोई नई बात नहीं रख रहा हूं, मैं तो भारतीय परम्परा से जो कुछ सीखा हूं – वही आपको बता रहा हूं। मेरी कोई मौलिकता नहीं है। पर उसके बावजूद भी वह कह रहे हैं कि व्यक्ति मेरे लिए बहुत श्रेष्ठ है, स्वतंत्र है। व्यक्ति स्वतंत्र्य मेरे लिए बहुत मायने रखता है और वही बुनियाद है। क्यों कहते हैं, क्योंकि व्यक्ति का महत्व स्वीकार करने से जिन सामाजिक व्यवस्थाओं के अंदर शोषण वगैरह की प्रक्रियाएं है, उनसे बड़ी आसानी से मुक्त हुआ जा सकता है। व्यक्ति की स्वतंत्र पहचान बनने की वजह से उसकी सारी सामाजिक, राजनैतिक और सामुदायिक पहचान दोयम दर्जे की हो जाती है जिससे उसकी प्राथमिकता बनी रहती है। अब उसके विकास के लिए सारे प्रयास होने चाहिए, ये उनकी राजनीति है, बड़े गहरे आदमी हैं ये गांधी। इसीलिए हिंद स्वराज हमें आगाह कर रहा है कहां जा रहे हो? इस रास्ते पर जाओगे तो खतरा है।

आप लोग हिंद स्वराज देखना और पढ़ना, फिर मुझे चिट्ठी लिखना कि क्या वाहियात किताब हमारे सर पर मढ़ दी। पहली बार पढ़ोगे तो वाहियात ही लगेगी। क्योंकि गांधी ने कहा है कि रेलवे को बंद कर दो, डॉक्टर चोर हैं, वकील चोर हैं, तो इन सब को खत्म करो। हम लोग आजकल लाइन लगा रहे हैं कि डाक्टर बनना है इसीलिए तो एक से डेढ़ लाख की ट्यूशन लग रही है और ये आदमी कह रहा है कि डॉक्टर नहीं बनना है। पर जितनी बार ध्यान से पढ़ोगे तो बात समझ में आएगी कि वह कुछ कहने की कोशिश कर रहे हैं और वह कह रहे हैं कि इस सभ्यता में कुछ गड़बड़ी है, आज हम लोग उसकी चोट खा रहें हैं। 105 साल हो चुके हैं इंकलाब को लिखे हुए। आदमी दृष्टा है, 100 साल पहले देख सकता था। क्या गड़बड़ चल रही है, अब मैं उस मुद्दे पर आता हूं जिससे मैंने शुरुआत की थी।

जवाहर लाल नेहरू और गांधी जी का पत्राचार हो रहा है। 1945 में मोहन दास क्या लिखते हैं– ''मैं आधुनिक विज्ञान को मानता हूं परंतु पुरानी बात आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखता हूं।'' अगर आप ये बात समझते हैं कि मैं आपके गांवों की बात कर रहा हूं, तो आप मेरी बात नहीं समझ पाएंगे। मेरा आदर्श गांव तो अभी मेरी कल्पना में है और मेरी कल्पना का ग्रामवासी जड़ नहीं होगा, पूर्ण चैतन्य युक्त होगा। वह गंदगी में, अंधेरे में पशु का जीवन नहीं जिएगा। स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्रतापूर्वक जिएंगे पूरी

दुनिया का सामना करने हेतु सिद्ध होंगे। वहां न हैजा होगा न प्लेग। चेचक भी नहीं होगा, वहां कोई आलसी भी नहीं रह पाएगा। न कोई ऐशोआराम मिलेगा सभी को शारीरिक श्रम करना पड़ेगा। यह सब होते हुए भी बहुत सारी चीजों की कल्पना कर सकता हूं, जिनकी व्यवस्था बड़े पैमाने पर करनी पड़ेगी। शायद रेलवे भी होगी और डाक–तार भी, क्या होगा और क्या नहीं होगा, वह मैं नहीं जानता मुझे उसकी चिंता भी नहीं है। मैं अगर मूल बात सिद्ध कर सकता हूं तो शेष बातें समय आने पर अपने आप ही आ जाएंगी। नेहरू भी उनको चिट्ठियां लिख रहे हैं। दोनों आपस में एक दूसरे को चिट्ठियां लिख रहे हैं। गांधी जी ने कहा कि तुम मेरे वारिस हो, तुम जवान हो, मेरी बातें समझते हो। बनिया होशियार है, माफ करना! मैं कोई गांधी का अपमान नहीं करता, मैं उनको बड़े प्यार से बनिया कहता हूं। मुझे संत कहने की कभी हिम्मत नहीं हुई। वे मुझे बनिये में ठीक लगते हैं। नेहरू सबसे ज्यादा शक्तिशाली हैं, जवान और युवाओं के प्रिय नेता हैं, इसीलिए वे चाहते हैं कि उनको बांध ले, पर ये भाई बंधने वाले नहीं हैं। बहुत सारी उनकी चिट्ठियां हैं पर मैं पढूंगा नहीं। अगर आप चाहें तो संदर्भ के तौर पर पढ़ सकते हैं।

मैं आपको बता दूं मुद्दे क्या हैं। नेहरू क्यों कहते हैं हिंद स्वराज एक बार देखा था मैं प्रभावित नहीं हुआ और मैं उसे कोई बहुत गंभीर नहीं मानता। कांग्रेस वर्किंग कमेटी में इस पर कभी चर्चा नहीं की और इसको गंभीर मानकर कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया। हिन्दुस्तान के गांव कभी आदर्श नहीं थे और ना हो सकते थे। वे गंवार और अशिक्षित लोगों के पिछड़ेपन से ग्रसित समूह थे, जिन्हें शहरी सभ्यता सिखानी चाहिए ताकि वे सभ्य बनें। ग्राम स्वराज में कल्पित आर्थिक कार्यक्रमों के आधार पर भारत की बड़ी आबादी को रोटी कपड़ा और मकान नहीं दिए जा सकते। कृषि आधारित समाज की कल्पना वास्तविक नहीं है। विकास, आधुनिकता और सभ्यता का अर्थ – शहर, बढ़ता हुआ उद्योग, सम्पन्न समाज, जहां राज्य संगठित और संचालित, सुरक्षा, उद्योग के साथ देश की सलामती भी रखेगा। नेहरू गांधी को नकार रहे हैं क्योंकि नेहरू मुक्ति, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और समाजवाद की बात करते हैं। क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्थाओं की कमजोरियों को दूर करने के लिए राज्य को लोक कल्याणकारी जवाबदारी देना जरूरी होता है और नेहरू इन मूल्यों में विश्वास करने वाले आधुनिक, प्रगतिशील और जवान है और एक ऐसे देश का बाशिंदा हैं जो देश अब स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला है। गांधी, नेहरू को कहीं पुराने नजर आ रहे हैं। और वे ये मान कर चल रहे हैं कि गांधी जिन विकेन्द्रित व्यवस्थाओं की बात कर रहे हैं उसके आधार में जो कुछ है वो इसमें उभर कर नहीं आएगा। इसीलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि गांधीजी की बात को नकारते हुए भारत देश, नेहरू के नेतृत्व में पंचवर्षीय योजना में जाता है और औद्योगिक देश बनने की कोशिश करता है और इसका परिमाण हम देख चुके हैं। मैं उस दिशा में नहीं जा रहा हूं क्योंकि वो सारी आर्थिक व्यवस्था है, मैं वापस शिक्षा की ओर लौट रहा हूं।

जिस मैकॉले की शिक्षा को हम आज तक गाली देते आ रहे हैं उस शिक्षा में कोई मूलभूत परितर्वन नहीं हुआ है। बहुत सारी बातें हुई, खैर क्या नहीं बदला; समाज किस तरह का होगा, अर्थव्यवस्था किस तरह की होगी, देश किस तरह नवनिर्मित होगा, इसके दर्शन और दृष्टि में जो दर्शन और दृष्टि पश्चिमी समाज के औद्योगिक समाज से आई हुई थी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। इसीलिए मैकॉले इस देश से नहीं गया, फैशन के लिए जरूर चला गया। आज भी हम सब जो हैं, बच्चों को रटा देते हैं। मैकॉले की शिक्षा

पद्धति को जो गुलामी प्रथा कायम करने के लिए है इसीलिए तो उसको निकाल देना चाहिए। इसीलिए हमने शिक्षा में बहुत अच्छे–अच्छे प्रयास किए। हम कुछ मौलिक नहीं कर रहे हैं – वही के वही हैं, ये बात हमको समझ लेनी चाहिए। 1947 से 2014 तक शिक्षा संबंधी करीब एक सौ आयोग और विद्वानों की समितियों का गठन केन्द्र और अलग–अलग राज्यों में हुआ है। इन सबसे आप परिचित होंगे। इन सभी विशेषज्ञों और समितियों का आधार और निष्कर्ष यही है कि किस तरह से शिक्षा प्रणाली में सुधार हो। जिससे इस देश के विद्यार्थी देश को जल्दी से आधुनिक और औद्योगिक देश बना सके। तंत्र में सुधार के बड़े प्रयास हुए, अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में मुख्य प्रयत्नों को देखें तो 1952 में माध्यमिक शाला कमीशन बैठा, जिसमें कहा गया कि शिक्षकों को व्यावसायिक तालीम दिलाएं। 1964 के कोठारी कमीशन को ऐसी ही आवश्यकता इसलिए महसूस हुई थी क्योंकि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के युग में व्यक्ति और समाज में समृद्धि, कल्याण और सलामती, शिक्षा से ही स्थापित हो पाएगी। अतः शिक्षक व्यावसायिक तरीके से चुस्त–दुरुस्त होने चाहिए। 1952 के 'प्रोग्राम ऑफ एक्शन' में ये कहा गया कि शिक्षकों की तालीम निरंतर होनी चाहिए यानि सेवा से पहले और सेवारत होने के कुछ–कुछ अंतराल में। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत डाइरेक्ट सीटीई (कॉलेज ऑफ टीचर एज्यूकेशन) की कल्पना हुई। इन सभी प्रयत्नों के बाद परिणाम बहुत उत्साहवर्धक नहीं रहा है।

2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा आई और ये समझाया गया कि अभ्यास क्रम का मुद्दा अहम है, अब तो अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में, सरकार ने देश के अध्यापकों को व्यावसायिक और विषय विशेषज्ञ बनाने में एड़ी–चोटी का जोर लगा दिया और अगर फिर भी शिक्षा की गुणवत्ता में फर्क नहीं आता तो समस्या कहीं और है। फिर पाठ्यक्रम पर बात आई – उसमें सुधार किए गए। इस बीच एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सारे देश में आ गया। 'लिबरल सोशल डेमोक्रेसी' की जगह 'लिबरल मार्केट डेमोक्रेसी' ने ले ली। राज्य की सत्ता के जख्म कम हो गए और सरकार की जवाबदारी नीति–निर्धारण तक सीमित हो गई। शिक्षा सामाजिक सेवा न रहकर आर्थिक सेवा हो गई। यानि शिक्षा एक वस्तु बन गई जिसकी खरीद–फरोख्त हो सकती है। गुणवत्ता वाली शिक्षा का मतलब– महंगी शिक्षा हुआ। इसी क्रम में 2009–2010 तक एक और तंत्र मूलक प्रयास हुआ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (अध्यापक शिक्षा) की एक रिपोर्ट निकली उसका उपशीर्षक है 'पेशेवर और मानवीय शिक्षक तैयार करने की ओर'। इसका एक अर्थ यह होता है कि जो पेशेवर होता है, वो मानवीय नहीं होता है और जो मानवीय नहीं होता है तो वो शिक्षक कैसे हुआ? इतने सालों तक जब अध्यापक शिक्षा को पेशेवर बनाते रहे, तब तक नहीं समझ में आई यह बात कि वो तो मानवीय नहीं बन रहा है। वो कैसे मानवीय बनता क्योंकि वो उस शासन व्यवस्था के प्रबंधन और संचालन का परिणाम है जिसमें आपको बड़े–बड़े उद्योग चलाने हैं, शहरीकरण करना है, समाज की व्यवस्था करनी है, उसके लिए आपको चाहिए जगह, मजदूर, संसाधन, ये सब कहां से आएगा, क्यों ये सोच हमारी नहीं बनी? सबने इस तरफ पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों को भटकने दिया है। ये सवाल हमारे मन में क्यों नहीं खड़े हुए? इसलिए नहीं खड़े हुए क्योंकि हम समझ रहे थे कि ठीक चल रहा है और बार–बार जो परिवर्तन किए, वो अच्छे परिवर्तन हैं। क्यों, सारे परिवर्तन यंत्र आधारित– तंत्र मूलक थे। 2010 की रिपोर्ट अलग नहीं है। जागने का समय है, शिक्षक पर ध्यान तो केंद्रित हुआ परंतु प्राथमिकता

तो अभी भी पेशेवर शिक्षक बनाने की ही है। विषय का विशेषज्ञ होना जरूरी है परन्तु यहां शिक्षक से यह अपेक्षित नहीं है कि वह देश और समाज की नवरचना में अपनी मौलिकता दिखाए। अपेक्षित यही है कि जो दर्शन और दृष्टि बन चुकी है उसके अनुसार ही वह विद्यार्थियों को तैयार करे। इस रपट की प्रस्तावना में शिक्षा के बुनियादी मुद्दों पर पेशेवर शिक्षक के व्यक्तित्व को भी शामिल करना होगा ताकि ये भी शिक्षा के आयामों का हिस्सा बन सके।

एक बार फिर यंत्राधारित नए तंत्र की रचना की बात करते हैं। समावेशी शिक्षा, समान–स्थायी विकास, लैंगिक परिप्रेक्ष्य, शिक्षा में समुदाय के ज्ञान की भूमिका से जुड़े मुद्दे, स्कूल में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के साथ ई–लर्निंग भी इस ढांचे का मूल है। अब क्या होता है बदलकर के, फिर वो ही बात आ गई। स्थायी विकास भी करना पड़ेगा, लैंगिक परिप्रेक्ष्य भी लाने पड़ेंगे, सामुदायिक ज्ञान भी लाना पड़ेगा। ये सब हम लोग सूचना सम्प्रेषण तकनीक (आईसीटी) में डाल देंगे तो हो जाएगा। ये तो ठीक है और क्या हमारी हालत है, ये देखिए कि इस देश में जो भी विशेषज्ञ नए सिरे से बैठते हैं वे यही कहते हैं कि इससे पहले तो इस देश में कुछ हुआ ही नहीं। इसमें जिम्मेदार मैं भी हो सकता हूं, मैं इससे बच नहीं रहा हूं, पर मैं बच्चों को ये समझाना चाहता हूं कि हम लोग कह देते हैं कि आज तक जो हुआ वो सब कचरा था, इसे फिर नए सिरे से लगाना है। रिपोर्ट में लिखा गया है कि 2009 तक में देश में तालीमी शिक्षकों के प्रशिक्षण के हालात अच्छे नहीं थे। इन विशेषज्ञों का यह मानना है कि पूर्व प्राथमिक, प्रारम्भिक शिक्षा के बारे में विभिन्न अध्यापक शिक्षा के नियमित व दूरस्थ बीएड, एमएड, सीपीईडी, बीपीईडी, एमपीईडी, के पाठ्यक्रम बने हैं। सन् 2004 में 2000 संस्थानों में 3000 पाठ्यक्रम चले रहे थे। जिनकी संख्या 2009 में बढ़कर 14,428 पाठ्यक्रम हो गई। इस दौरान विद्यार्थियों की संख्या 49,600 से बढ़कर 2,74,000 हो गई।

यह विस्तार गुणवत्ता के कई मायनों और ढांचागत प्रावधानों, संकाय सदस्यों की योग्यता, अधिगम साधनों एवं विद्यार्थियों के प्रोफाइल में बड़ी गिरावट लेकर आया। अभी 2 दिसम्बर 2009 में 31 आईएएसई एवं 104 सीईटी स्वीकृत हुए जो देश के 599 जिलों में चल रहे हैं। हमारे देश के 571 जिलों में डायट की शुरुआत हुई, जिसमें 529 ही चल रही हैं। अभी 32 डायटों को क्रियाशील करना बाकी है, ये सभी संकाय सदस्यों की अनुपलब्धता का संकट झेल रही हैं। हमारे विशेषज्ञ कह रहे हैं कि 10 लाख विद्यार्थी हो गए पांच साल में। 3200 संस्थानों से बढ़कर संस्थानों की संख्या हो गई 11,900। पर माफ करना योग्य लोग नहीं मिल रहे हैं, डायट चलाने के लिए। ये दुर्भाग्य नहीं है क्या इस देश का? तो हम कर क्या रहे हैं, करोड़ों रुपये डाले हैं इसमें, पर हमारी ये हालत है। सीटीई और आईएएसई अपने आवश्यक कार्यों की पूर्ति में गंभीर असफलता का सामना कर रहे हैं। सारी समस्याएं कुल मिलाकर यह कहती हैं कि हमने पिछले 35 सालों में अध्यापक शिक्षा के बारे में ज्यादा कुछ किया ही नहीं। ऐसा तो नहीं है, यहां पर कई बुजुर्ग लोग बैठे हैं, जो इस व्याख्यान के खत्म होते ही मुझे जरूर कहेंगे कि भाई हम तो लगे हुए थे अच्छे से। हमने तो जिंदगी निकाल दी बच्चों के पीछे, सीखें हैं सारे। वे इसीलिए कह रहे हैं कि हम पूरे राष्ट्र के तौर पर जिस दृष्टि और दर्शन के पीछे पड़े हैं उसका तो यही परिणाम आना था।

इतनी सारी बातें मैं क्यों कह रहा हूं, क्योंकि उन मोहन दास को फिर याद कर रहा हूं जिसने कहा कि इस देश में शिक्षा ऐसे नहीं चलती थी।

हम लोग इतने बेवकूफ नहीं थे। इतिहासकार धर्मपाल की किताब, 'द ब्यूटीफुल ट्री' यहां लाइए और बच्चों को पढ़ाइए। मोहन दास ने गोलमेज सम्मेलन में हिन्दुस्तान की शिक्षा प्रणाली के बारे में, उसकी व्यवस्था के बारे में कहा था कि दैट इज लाइक ए ब्यूटीफुल ट्री इसलिए धर्मपाल ने अपनी किताब का नाम रखा 'द ब्यूटीफुल ट्री', जिसमें शिक्षा की पारंपरिक और पुरानी व्यवस्थाओं के बारे में रिपोर्ट है। जो हमारे शिक्षक हैं उन लोगों को पढ़नी चाहिए। 'द ब्यूटीफुल ट्री' को जरूरी संदर्भ में शामिल होना चाहिए। हिंद स्वराज में मोहनदास कहते हैं – अंग्रेज विद्वान प्रोफेसर हक्सले ने शिक्षा के विषय में कहा है– ''सच्ची शिक्षा उस आदमी को मिल रही है, जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुश में रहता हो और सोचे हुए काम को आसानी और प्रसन्नतापूर्वक करता है; जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है; जिसका मन प्रकृति के नियमों के ज्ञान से भरपूर है; जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, जिसकी अन्तःवृत्ति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामों से नफरत है और दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है, ऐसे ही आदमी को सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं। क्योंकि वो प्रकृति के नियमों के अनुसार चलता है, वह प्रकृति का अधिकतम उपयोग करेगा और प्रकृति उसको सम्पोषित करेगी। ऐसी शिक्षा देने वाले शिक्षक का निर्माण करना है यह मेरी दूसरी चुनौती है। सिर्फ रिपोर्ट में यह कह देने से कि उसे मानवीय होना चाहिए, यह बात खत्म नहीं होगी। उसको मानवीय बनाने की कोई बात रिपोर्ट में लिखी नहीं जा सकती। यह रिपोर्ट में लिखने लायक बात नहीं है। अच्छी शिक्षा व्यवहार से आती है ऐसा मोहन दास करमचंद गांधी ने अपने जीवन में सीखा और हम सबको बताने की कोशिश की। अगर आज हमारा कोई गंभीर संकट है तो यही है कि हम शिक्षक का निर्माण नहीं करवा पा रहे हैं। शिक्षक का बाहरी आवरण ठीक करने की कोशिश कर रहे हैं पर उसका जो मानस है, उसको बनाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। जब तक हमारे समाज निर्माण की जो कल्पना है, उस कल्पना को समझते हुए शिक्षक जी नहीं रहा है, तब तक वह शिक्षक, शिक्षक नहीं हो सकता।

''सच्ची शिक्षा उस आदमी को मिल रही है, जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुश में रहता हो और सोचे हुए काम को आसानी और प्रसन्नतापूर्वक करता है; जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है; जिसका मन प्रकृति के नियमों के ज्ञान से भरपूर है; जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, जिसकी अन्तःवृत्ति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामों से नफरत है और दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है, ऐसे ही आदमी को सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं।

कुछ दिनों में कक्षा की जरूरत नहीं पड़ेगी, पर अभी तो बच्चों ने स्कूल में यह कहना शुरू किया है कि क्या पढ़ा रहे हो, ये तो मैं जानता हूं। आपसे अच्छा जानता हूं, क्योंकि फलां साइट पर जाओगे तो यह कक्षा अच्छी चल रही है। खान अकादमी के बारे में सुना होगा आपने। बांग्लादेश का एक युवा अमेरिका गया और उस बेचारे की अपने भतीजे से कुछ बात हुई। पढ़ाने की कुछ मुश्किल थी। उसने कहा चल मैं तुझे कंप्यूटर पर समझा देता हूं। 'खान अकादमी' आज विश्व की बहुत बड़ी प्रख्यात अकादमी है। लाखों बच्चों को खान अकादमी प्रशिक्षित कर रही है। आप लोग गुगल करिए 'खान अकादमी' और आप लेसन ले सकते हैं। ऐसे कई साइट्स हैं जिस पर आपको ज्ञान लेने के

लिए शिक्षक की ज़रूरत नहीं है। अभी तो सरकारें 5300 रुपये में विद्या सहायक से काम चला रही है। ये लोग 2500 से काम शुरू किए थे। अब जाकर 5300 तक पहुंचे हैं। बाद में सरकार एक दिन हाथ उठाकर कह देगी कि ये सब हमारा काम नहीं हैं। चाहे स्कूल चले या न चले जाओ हमारे पास पैसा नहीं है, हम स्कूल नहीं चलाएंगे, क्या करोगे। कुछ नसीब वाले विद्यार्थी जो विद्या भवन जैसी जगह में पढ़ते हैं। बाकी सब जगह रेट चल रहा हैं– चालीस हजार से लेकर डेढ़ लाख रुपए में डीएड। क्लास नहीं करना है तो दो लाख में डिग्री हाथ में आएगी। दूसरा, मैंने बताया कि शिक्षा का व्यापारीकरण हो चुका है। शिक्षा वस्तु बन चुकी है। यह हो रहा है। शिक्षक कैसा होना चाहिए? इस बारे में आप सोचो। ईमानदारी से विद्यापीठ में थोड़ी–बहुत कोशिशें हो रही हैं शिक्षक बनाने की। बिना छात्रालय में रहे ये काम नहीं होगा और छात्रालय में सिर्फ छात्र बनकर नहीं रहना। छात्रालय में साथ में जीना है, साथ में काम करना है, साथ में झाड़ू लगेगी, साथ में खाना पकेगा, साथ में कपड़े धोए जाएंगे, साथ में बागवानी होगी, सब्जी उगाई जाएगी। यहां लड़कियों को बहुत फायदा हुआ है, क्योंकि वे आदिवासी क्षेत्रों से आती हैं। हिमोग्लोबिन कम होता है, तो हमने बोला सब्जी उगाओ, कचरे का कंपोस्ट किया, कैंपस में ही कंपोस्ट को छत पर डाला, मिट्टी डाली, पालक उगाया, दुधी (लौकी) उगी, हरी पत्तियां निकली, हरी साग–भाजी हुई। दो फीसदी हिमोग्लोबिन मेरी बेटियों का बढ़ गया और मेरा तो ऐसे ही बढ़ गया। मैंने कहा – ये तो अच्छी बात है। अब ये कहीं बीएड के कोर्स में नहीं है, ना ही एनसीएफ में है। अरे भई साथ रहने और काम करने से शिक्षा होती है – चरित्र का निर्माण होता है। मूल बात चरित्र निर्माण की है और जब हम साथ में रहते हैं तो चरित्र निर्माण होता है; वहां शिक्षक के चरित्र का बड़ा महत्व है। कोई कहता है कमाल के आदमी हो; मोबाइल नहीं रखते हो। मैं कहता हूं मोबाइल रखता हूं। जब गुजरात से बाहर निकलता हूं, मां की तबीयत अच्छी नहीं रहती है आजकल, इसीलिए मां से संपर्क करना पड़ता है। पर मैं कैंपस में नहीं रखता हूं क्योंकि मैंने बच्चों से कहा है – तुम भी नहीं रखोगे। वे लोग तो नहीं रखेंगे और मैंने रखा तो बोलेंगे– अच्छा ये नियम सिर्फ हमारे लिए है और आप बचे हुए हैं; जब चाहो तब एसएमएस कर रहे हो आप।

देखो भाई! शिक्षक का चरित्र बहुत जरूरी है, मोहनदास करमचंद गांधी जब तक छह घंटे काम में नहीं लगाते थे– आश्रम की खेती में। तब तक बच्चों से नहीं कह सकते थे कि खेती करो। मनुष्य निर्माण का जहां सवाल है; मनुष्यों में खासकर के शिक्षक का निर्माण करना है – इसमें दृष्टि और व्यवहार दोनों डालने पड़ेंगे। ये हमारी दूसरी चुनौती है– इस चुनौती के लिए हमारी आज कोई तैयारी नहीं है, शायद ये मुश्किल से आएगी और ये तैयारी एक साल में नहीं हो सकती।

मैं समझ सकता हूं मेरे पास बी.एड. करने के लिए विद्यार्थी जब आते है जो 10–12–15 साल किसी और स्कूल, कॉलेज में पढ़े हुए होते हैं। वे कहते हैं क्या वाहियात बात कर रहे हो, मैं यहां बी.एड. करने आया हूं, मुझसे मजदूरी करवाते हो। यह तो अच्छा है कि मैं 16 साल का हो गया हूं, नहीं तो मानव अधिकार में बाल मजदूरी का केस दायर कर देता। हमारी मुक्त होने की छटपटाहट ने – आधुनिक समाज में मानव अधिकार की जो बात आई है, उस अधिकार में कर्तव्य नदारद है। बिना कर्तव्य के अधिकारों से हिंसा, प्रत्यक्ष और भ्रांत्यात्मक, दोनों तरह की बढ़ती है, इससे अहिंसक समाज का निर्माण नहीं होता। 1937 में इस देश के लोगों ने सोचा कि चलो तैयारी करें, अब हमें आजादी मिलने ही वाली है। 1937 में कई राज्यों

में प्रांतीय सरकारें आई। हम लोग गुलाम थे, इसके बावजूद अंग्रेजों ने कहा कि तुम लोग सरकार बनाओ। प्रांतीय सरकारों के मुख्यमंत्रियों और शिक्षामंत्रियों का वर्धा के जमनादास बजाज मारवाड़ी स्कूल में एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमें सारे दिग्गज लोग इकट्ठे हुए थे, जहां काफी गंभीर चर्चाएं हुई। हमने कभी उसको अपने कोर्स में लगाया नहीं। इस देश के किसी भी बी. एड. कॉलेज ने आज तक उसे कोर्स में नहीं लगाया कि उस सम्मेलन में क्या हुआ, उसमें कौनसे निर्णय लिए गए और उससे कौनसे पाठ्यक्रम निकले, उसकी कौनसी पद्धतियां निकली, उस पर हमने कभी काम नहीं किया। क्योंकि हमारी दिशा और दृष्टि में वो कभी थे ही नहीं।

उस सम्मेलन में तय हुआ था कि उसे बुनियादी तालीम, नई तालीम कहा जाएगा और उस नई तालीम की चार प्रमुख बातें थी। इस सम्मेलन में ये मूल्यांकन हुआ कि आज भी शिक्षा प्रणाली देश और समाज की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नहीं है। ''प्राथमिक शिक्षा सात साल की होनी चाहिए। सामान्य ज्ञान का स्तर मेट्रिकुलेशन तक का होनी चाहिए। अंग्रेजी मात्र आवश्यक स्तर पर और उद्योग की प्रधानता होनी चाहिए। लड़कियों और लड़कों के व्यक्तित्व के समग्र विकास हेतु शिक्षा ऐसे उद्योगों की सहायता से होनी चाहिए जो उत्पादक हो और आय पैदा करने वाली हो। उच्च शिक्षा निजी क्षेत्र के लिए छोड़ी जानी चाहिए और देश के उद्योग पर आधारित होनी चाहिए तथा देश की तकनीकी, कला और संस्कृति की आवश्यकताओं के अनुसार उनके अभ्यास क्रम होने चाहिए।'' क्या तय हुआ? सारे देश में 7 साल तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा– निःशुल्क और आवश्यक रूप से दी जाएगी। आज नहीं तय हुआ 1937 में तय हुआ था। पर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लाते–लाते इस देश में 60 साल तक प्रयास करने पड़े, इतने महान लोगों के होते हुए भी। हम लोग बखान करते रहे अपने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्वशिक्षा अभियान और क्या–क्या कार्यक्रम हम लोगों ने नहीं चलाए। 1937 में ये बात हुई, शिक्षा सिर्फ और सिर्फ मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। शिक्षा का मूल आधार किसी भी प्रकार के उद्योग एवं शारीरिक श्रम पर आधारित होना चाहिए। शिक्षकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उत्पादक उद्योग से प्राप्त होना चाहिए। ये कठिन था, उसके बाद सरकार बदली और तय हुआ और इसे बुनियादी तालीम कहा गया। इसमें शिक्षकों की तालीम पर बात हुई और ऐसे शिक्षक कहां मिलेंगे, तो आपको बी.एड. में क्या करना है– पता है। कपास की खेती, ऊन और रूई बनाने की सभी प्रक्रिया, चरखे की बनावट और किस तरह से उसका जतन किया जाए – उसका विधान और सारे औजारों की तालीम और उद्योगों के पीछे जो शास्त्र है उसका ज्ञान और सुथारी काम, बढ़ाईगिरी सिखानी, उसके साथ खेती और गौपालन, कताई–बुनाई, शाजदानी पैदा करना, रूई पैदा करना,

प्राथमिक शिक्षा सात साल की होनी चाहिए। सामान्य ज्ञान का स्तर मेट्रिकुलेशन तक का होनी चाहिए। अंग्रेजी मात्र आवश्यक स्तर पर और उद्योग की प्रधानता होनी चाहिए। लड़कियों और लड़कों के व्यक्तित्व के समग्र विकास के हेतु शिक्षा ऐसे उद्योगों की सहायता से होनी चाहिए कि जो उत्पादक हो और आय पैदा करने वाली हो। उच्च शिक्षा निजी क्षेत्र के लिए छोड़ी जानी चाहिए और वह देश के उद्योग पर आधारित होनी चाहिए तथा देश की तकनीकी, कला और संस्कृति की आवश्यकताओं के अनुसार उनके अभ्यास क्रम होने चाहिए।

खिलौने बनाना, चर्म काम, कागज का काम, ये सब तालीमी शिक्षक को सिखाना था। इसके साथ–साथ शिक्षा के सारे सिद्धांत, नियम, पद्धतियों का अभ्यास सब करना है, ये मूल बात थी। उस कमेटी में यह चुनौती थी। कुल मिलाकर सपनों के बिना तंत्र रखना कोई मायने नहीं रखता और जो तंत्र हम रख रहे हैं वो किसी और सपने के पीछे लगा हुआ है। ऐसा नहीं कि उसका दर्शन नहीं है हमारा दर्शन तो वही है जो मैंने पहले बताया था। हम लोग एक छलावा करते हैं और मानते हैं कि हम अपने समाज का निर्माण करेंगे। हम अपने समाज का निर्माण मौलिकता से नहीं कर रहे हैं। हम लोग अच्छे नकलची भी नहीं हैं। नई पीढ़ी के साथ ये जो हो रहा है उसमें बड़ी मुश्किल लगती हैं। क्योंकि एक तरह से हम अपने आपको धोखा दे रहे हैं और हम धोखेबाज बनाएंगे।

शिक्षक को मानसिक तौर पर वानप्रस्थी होना चाहिए। कम से कम कोई भी गृहस्थ की आत्मा या चाह रखने वाला अच्छा शिक्षक नहीं हो सकता, ये शिक्षक को बनाने की बात है। छठी क्लास में मेरे साथ पढ़ने वाले दोस्त का नाम लेने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। हीरालाल पारीख, गांधीधाम में आज 600 करोड़ का असामी है। कभी पास नहीं होता था, मुश्किल से पास होता था। नकल करता था मेरे साथ, अच्छा लड़का था। बड़ा इंटरप्राइजिंग लड़का था। बिजनस में आगे निकला। मैं पहले–दूसरे नंबर पर आता था। बेस्ट स्टूडेंट का खिताब भी पाया हुआ था। पर मेरे पास आज 85 यार्ड के दो बैडरूम के फ्लैट के सिवा कुछ नहीं है। मैं हीरालाल से प्रतिस्पर्धा नहीं करना चाहता हूं क्योंकि मेरी उससे कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। उसे व्यापारी या उद्योगपति बनना था वह बना। मुझे शिक्षक बनाना था मैं शिक्षक हूं। अगर मेरी मानसिकता यही है कि मेरे पास इसके जैसी मर्सीडीज गाड़ी क्यों नहीं है तो मैं शिक्षक नहीं बन सकता। मैं जरूरतों की बात नहीं करता हूं क्योंकि ये समाज की जिम्मेदारी है कि शिक्षकों की जरूरतों को पूरा करे, शिक्षक मानसिकता से गृहस्थ हो गया है इसलिए शिक्षक का अपना सत्व खत्म हो गया। यह बात इतनी महत्वपूर्ण है कि किसी सरकारी रिपोर्ट में लिखी नहीं जाती, इस पर कोई अमल नहीं होता। यह हमारी सबसे बड़ी चुनौती है।

मेरे मन में कुछ बातें थी जो मैंने सब के साथ बांटी, आज की पीढ़ी ये बात समझ जाए कि इस हिसाब से मोहन दास करमचंद गांधी एक बनिये थे, व्यावहारिक बातें करते थे। सबके लिए बात करते थे। सब के लिए बात करने वाला अच्छा बनिया नहीं है, सच्चे फायदे की बात करने वाला अगर बनिया नहीं है तो फिर क्या है। उसको संत बनाने की जरूरत नहीं है। सबका फायदा, कम खर्च और लम्बा चलने वाला, ये बनिये की समझ नहीं तो किसकी समझ है। मैं तो चाहता हूं कि शिक्षा में काम करने वाले हम सब लोग बनिये की समझ बना लें, तो हम अच्छे शिक्षक बना पाएंगे। ऐसी उम्मीद है। मैं कभी आशा नहीं छोड़ता और निराश कभी नहीं होता क्योंकि मेरा मानना है कि

''तुम में ही कोई गौतम होगा, तुम में ही कोई गांधी।''

सुदर्शन अय्यंगार : गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कुलनायक हैं। साथ ही आप कई राज्यों एवं राष्ट्रीय स्तर की सरकारी एवं गैर सरकारी सलाहकार समितियों के सदस्य हैं। गांधीवादी विचारधारा एवं उनका अमल, सामाजिक विकास के क्षेत्र में काम करने वाले संस्थान एवं प्राकृतिक संसाधन विकास एवं प्रबंधन आपके शोध क्षेत्र रहे हैं।

लिप्यंतरण : **कामिनी उपाध्याय** – विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।

अवलोकन : पढ़ना सीखने के

✧ प्रमोद मैथिल

"हमारे बच्चे को पढ़ना कब आएगा?'' शिक्षक से पालकों का यह एक प्रमुख सवाल रहता है। यह सवाल तब और महत्त्वपूर्ण बन जाता है जब आप सामान्य व्याप्त समझ से इतर कुछ करने का प्रयास करते हैं। हालांकि मैं जिसका जिक्र करने जा रहा हूं, वह कई वर्षों से तरह–तरह से स्थापित किया जा चुका है कि, ''बच्चे अक्षर ज्ञान से पढ़ना नहीं सीखते वरन वे पूरे संदर्भ वाली लिखित भाषा के साथ काम करते रहने से सीखते हैं, जैसे– तैरना, पानी में तैरकर ही सीखा जा सकता है ठीक वैसे ही पढ़ना, पढ़कर ही सीखा जा सकता है।'' इसी प्रमुख विचार के आधार पर हमने भाषा सीखने की पूरी प्रक्रिया से संदर्भहीन अक्षर सिखाने को एक तरफ कर दिया और रोचक कहानी–कविताओं से काम शुरू किया। इसके परिणाम काफी उत्साहजनक रहे।

उस दिन 6 साल की एक बच्ची ने अपनी शिक्षिका से पूछा कि ऐसा क्यों होता है कि जब आप इस किताब से कहानी सुनाते हो तो वह हमेशा एक ही होती है, और जब मैं इस किताब से कहानी सुनाती हूं तो वह हर बार अलग होती है? इस पर शिक्षिका ने कहा कि क्योंकि मैं इसमें लिखे को पढ़कर सुनाती हूं और तुम इसके सिर्फ चित्र देखकर कहानी गढ़ती हो। इस घटना के ठीक 15 दिन बाद वह बच्ची पढ़ रही थी। असल में इस घटना से, उसके मन में पढ़ना सीखने की तीव्र इच्छा पैदा हो गई। एक और बच्ची को भी इसी तरह की पढ़ना सीखने की तीव्र इच्छा के चलते बहुतेरे प्रयास करते देखा। उसने भी 30 दिनों में ही पढ़ना सीख लिया। इस तरह आज हमारे सारे 6 बच्चे पढ़ रहे हैं। किसी भी बच्चे को यह एहसास होना कि क्या नहीं आता, साथ ही भीतर से सीखने की इच्छा होने से संसाधनों और मौकों को बच्चे स्वतः ही खोज कर सीख ही लेते हैं।

यह अनुभव 'आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल' का है। हम मानते हैं कि बच्चे अपने अनुभवों से बेहतर सीख सकते हैं, उनके सीखने की क्रम व गति अलग–अलग हो सकती है। यानि एक ही उम्र के दो बच्चे भाषा के सभी चार कौशलों (पढ़ने, लिखने, सुनने और बोलने) में अलग–अलग स्थिति पर हो सकते हैं। इसके लिए स्कूल में उपयुक्त माहौल बनाने की जरूरत होगी। जिसमें भरपूर संसाधन व स्कूल में शिक्षक सत्ता को शिथिल कर, बच्चों को स्वायत्तता देना शामिल है।

जब हमारे बच्चे पढ़ना सीख रहे थे तब हम उनके साथ सतत् सीखने–समझने का प्रयास कर रहे थे कि असल में वे क्या करते हैं कि पढ़ना सीख जाते हैं। मोटे तौर पर कहें तो कोई एक तरीका नहीं जान पड़ता पर वे सब रोजाना भाषा के साथ खेलते रहते हैं, नए–नए प्रयोग करते हैं और जाने कब वे एक बेहतरीन पाठक व अच्छे लेखक बन जाते हैं।

बच्चों के निडर प्रयोग के जज्बे को समझने के लिए, मुझे अपनी बिटिया का एक वाकया याद आता है कि जब वह 4 साल की थी। उसने

अचानक बोला कि पापा, मैं गेंद फेंकूंगी आप "कैंचना"। मैं हैरान था क्योंकि "कैंचना" एक नया शब्द था जो उसने बनाया था। जिसके लिए उसने कहीं से "कैच" सुना होगा। फिर "ना" कब–कब लगाते हैं यह सुन–सुन कर ही समझा होगा। कमाल था कि सही जगह आते ही पूरे विश्वास के साथ उसने यह शब्द इस्तेमाल किया। असल में यह निडरता स्कूल खत्म करता है, गलती करना स्कूल में अपराध के जैसा है। मैं बड़े गर्व से कहता हूं कि हमारे स्कूल मे बच्चे गलतियां करने लगे हैं।

स्कूल के स्वरूप व माहौल में बदलाव और अनुभव आधारित शिक्षण व्यवस्था के लिए तरीका ऐसा हो कि बच्चों में सीखने की इच्छा पैदा हो, जिसे जीवित रखना तथा यह पक्का करना कि उन्हें प्रयोग करने के सतत मौके मिलते रहें।

हमने पूरे स्कूल को संदर्भ वाली व आकर्षक लिखित भाषा से भर दिया। उपयोग में आने वाली भाषा व शब्दों के लिखने के मौके और अपनी भाषा में बात कहने–सुनने के मौके पैदा किए। यानि सभी चार कौशलों (पढ़ने, लिखने, सुनने और बोलने) पर एक साथ काम करते हुए सिर्फ उनकी भाषा समृद्ध हो, इस मकसद से काम किया। चारों तरफ के वातावरण से तारतम्य बिठाने तथा संवाद कर पाने की जरूरत के चलते उनमें सीखने समझने की इच्छा पैदा होती है।

हमने कभी यह जिद नहीं की कि कोई बच्चा, किसी खास समय अवधि में, कुछ सीख ही जाए। उनके सीखने के क्रम को पहले से निर्धारित नहीं किया। पिछले वर्ष, दो बच्चों को लगा कि पढ़ना सीखने के लिए शायद A, B, C... आना जरूरी होगा जो उन्हें तार्किक रूप से सही लगा तो उन्होंने इसकी मांग की। व्यक्तिगत तौर पर मैं इसके पक्ष में नहीं हूं पर उनकी इच्छा के चलते हमने सामग्री उपलब्ध कराई और उनके साथ काम किया पर ऐसा उन दोनों बच्चों ने एक ही दिन किया। दूसरे दिन उन्होंने साफ इंकार कर दिया। कहा कि मजा नहीं आ रहा। शायद उन्होंने उस समय इसे छोड़ दिया या दूसरे किसी तरीके की खोज में लग गए। कुछ समय बाद उनमें से एक बच्चे ने किसी तरह पढ़ना सीख लिया और फिर यह काफी तेजी से फैला और आज उस समूह के सारे बच्चे पढ़ रहे हैं। सहज, सम्मानजनक व दबाव विहीन वातावरण में ये इच्छा जिंदा रहती है और साथ ही बलवती होती है ।

नए प्रयोग के मौके के लिए यह आवश्यक है कि हम उनके सीखने की प्रक्रिया को सतत् देखते रहें। इस लिहाज से हमने देखा कि बच्चों के इन चार कौशलों (पढ़ने, लिखने, सुनने और बोलने) की उपलब्धियों में कुछ पैटर्न दिखता है, हालांकि थोड़े से बच्चों के साथ व दो साल का समय यह कहने के लिए बहुत ही कम है। अतः हम यह कतई दावा नहीं करते कि ये पैटर्न बहुत सटीक व सर्वमान्य हैं तथा हर बच्चा इन सारे चरणों से गुजरेगा या इसी क्रम में चलेगा, इसका भी कोई दावा नहीं है । बस हम अपने थोड़े से बच्चों के साथ के अनुभव व कुछ सामूहिक सोच–विचार से जैसा समझ पाये वह आपके साथ बांट रहे हैं।

बच्चों के सीखने के तरीके को लिखना, सीखने–सिखाने में, कई सारी सीमाओं में बांधता है, मसलन पढ़ने, लिखने, सुनने और बोलने ये चारों कौशल एक साथ व आगे पीछे बढ़ रहे होते हैं। और तो और वास्तव में ये बच्चों का मुख्य लक्ष्य नहीं है, वरन यह पूरी भाषा पर पकड़ बना पाने या यूं कहें कि भाषा का ज्यादा सटीक व अर्थपूर्ण उपयोग करके अपने संवाद बना पाने की जद्दोजहद का उपफल मात्र है। फिर भी मैं इसे लिखने की कोशिश कर रहा हूं।

सुनने का कौशल : जब कान के सभी पुर्जे पूरी तरह से विकसित हो जाते हैं तब पहली बार कोई बच्चा यह पकड़ता है कि आने वाली आवाज की दिशा कौन सी है। दूसरी उपलब्धि में वह वस्तुओं की आवाज व बोलने की आवाज में अंतर व आवाज पर प्रतिक्रिया करता है। अब वह और बारीक अंतर को समझने के लिए हर आवाज पर ध्यान देगा, ऐसा व्यवहार करेगा जैसे वह समझ रहा/रही है। कई बार बच्चे सुन रहे होते हैं पर प्रतिक्रिया नहीं होने से समझ आता है कि वे समझ नहीं पाए। हमें इस समय अपनी अधीरता पर नियंत्रण की जरूरत होगी। कई बार बच्चे अपने आस–पास के बच्चे की प्रतिक्रिया देखकर या प्रतिक्रियाओं के संकलन में से दोहराते हैं। बहुत ही तेजी से यह ज्यादा सटीक होती जाती है। यह काम वे अपनी मौलिक जिज्ञासा की प्रवृत्ति, धैर्य, आंखों के तालमेल आदि की मदद से करते हैं। इस कौशल में बच्चे के भीतर ही सब कुछ चल रहा होता है।

बोलने का कौशल : अपनी बात बताना तो बच्ची/बच्चा बहुत पहले से कर रहा होती/होता है– भूख लगी या सू–सू आयी तो रोती या हंसती है। पर इसके साथ ही वह अपने पूरे शरीर का इस्तेमाल करके हावभाव से बताता/बताती है। शरीर और भाषा को मैं आगे अभिनय कहूंगा। अब बच्ची/बच्चा धीरे–धीरे अभिनय को कम करेगी/करेगा और भाषा का उपयोग बढ़ाते जाएगी/जाएगा। हालांकि हम में से कोई भी कभी भी बगैर अभिनय के नहीं बोलते।

वह बोल पाता/पाती है यह एक कमाल ही है क्योंकि उसके पास यह पता करने का कोई तरीका नहीं है कि हम ये तरह–तरह की आवाजें कैसे निकाल रहे हैं। वह हर क्षण तरह–तरह की आवाजें निकालता रहता/रहती है और फिर एक दिन जब वह पहली बार कुछ भी अर्थपूर्ण आवाज निकालती/निकालता है – मसलन 'अम्म' 'ताता' तो उस समय हम सही गलत के हिसाब की बजाय, प्यार भरी प्रतिक्रिया देते हैं, अरे मेरी बेटी/बेटा ने 'ताता' बोला या मुझे पुकारा। यह प्यार उसे अपूर्व शक्ति देता है। अब वह और शब्दों के लिए प्रयास करेगी/करेगा। जबकि हम स्कूलों में बच्चे की हर गलती पर लाल गोला लगा कर उसे आगे प्रयास करने से रोकते हैं।

बोलने के उसके प्रयास अब खुद के या बाहरी आवाज की प्रतिक्रिया दोनों से होते हैं। बहुत जल्द ही वह कुछ शब्द बोलने लगेगी/लगेगा, जो शुरू में शायद उतने स्पष्ट नहीं होंगे। वह तुतलाएगा, फिर साफ बोलने लगेगा/लगेगी। पर यदि हमने अपनी प्रतिक्रिया में भी तुतला के जबाब दिया तो शायद उसका तुतलाना थोड़े ज्यादा दिन रहे। सुझाव रहेगा कि आपकी ओर से स्पष्ट भाषा जाए। यह उसे मदद करेगा कि वह ज्यादा सर्वमान्य स्पष्टता से बोल सके।

बड़ी जल्दी ही वह दो शब्दों को मिला कर बोलने लगेगी/लगेगा, फिर पूरा वाक्य। उस दिन एक बच्ची ने बोला "छल (सर) पानी" और पानी की ओर इशारा किया। वे अभिनय और भाषा के उपयोग से अपनी पूरी बात कह देते हैं। एक बच्ची

लगभग रोज ही मुझसे जरूर बोलती है "हमाली छुटी 1 बजे" और वह जानती है कि उसने मुझसे कहा कि "हमारी छुट्टी एक बजे होगी।" वे सही सिद्ध हो चुके शब्दों और वाक्यों को तरह–तरह से दोहराते है; मानो परीक्षण कर रहें हों।

इसके साथ नये शब्द बनाना, उनका पूरी गंभीरता व निडरता से इस्तेमाल करना। बात पर जोर डालना और लय से बोलना ये भी उनके प्रयोग के हिस्से हैं। एक मजेदार बात देखी है कि जैसे–जैसे उनके पास अर्थपूर्ण भाषा आती जाती है वे खूब बोलते हैं। इस काम में स्कूल तथा बाहर हो रही योजनाबद्ध व मुक्त चर्चाएं सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाती हैं। अब उनका शब्दकोश बढ़ रहा है तो वे भाषाई बारीकियों को भी पकड़ने लगते हैं मसलन अलग–अलग भाषाएं होती हैं। अपने विचार को रखने से पहले अनुमान लगाना कि किस तरह से बोलना ज्यादा उपयोगी रहेगा। अब उनका बोलना ज्यादा व्यवस्थित व एक दूसरी बात से संबंधित होने लगता है। मुहावरे, उदाहरण आदि शामिल करना उनका अगला चरण होगा। फिर अंतहीन आकाश।

पढ़ने का कौशल : किताबों के रास्ते हम इस पर चलते हैं। बच्चे किताब देखते हैं, पलटते हैं, यह देखते हैं कि इसमें कुछ है जिसे सब पढ़ते हैं। वे भी दिखाते हैं कि वे पढ़ रहे हैं। अभी उनकी रुचि चित्रों में ज्यादा है। वे ये भी समझ जाते हैं कि ये लिखा है। यह भी अर्थपूर्ण है। फिर वे ये जानने का प्रयास करते हैं कि पढ़ा कैसे जाता है, मसलन हिन्दी को बाएं से दाएं पढ़ते हैं, आदि। उस दिन एक चार साल की बच्ची एक किताब से कहानी सुना रही थी, उसका हाथ लिखित भाषा पर चल रहा था और वह चित्र से कहानी बनाती जा रही थी। वे एक ही कहानी को कई बार सुनने की मांग करते हैं और अब उसे पूरी लिखित कहानी याद थी और लिखे पर सटीक उंगली चला रही थी। ऐसा भी जान पड़ता है कि बच्चे पहले पेज के हिसाब से कहानी बोलते हैं यानि जो हिस्सा बोल रहे हैं उस बारे में उसी पेज में लिखा है। इसके बाद वे एक–एक पैरा भी ठीक–ठीक पकड़ने लगते हैं। इसके बाद वे एक–एक लाइन पर सटीकता से उंगली चलाते हैं। अब उसे कुछ–कुछ शब्द भी पूरे एक चित्र के रूप में याद हो गए। जल्द ही यह चित्र–शब्द कोश बढ़ता जाता है। वे अलग अलग चित्र–शब्द में अंतर भी देखने–खोजने लगते हैं और अब वे अलग–अलग अक्षर भी पहचान पाते हैं। इतना होने के बाद वे नए अनजान शब्दों को पढ़ने की कोशिश करने लगते हैं। जब वे किसी ऐसे शब्द को अपने अक्षर ज्ञान के संकलन व कुछ अटकलों की सहायता से पढ़ पाते हैं तो उनका उत्साह व खुशी देखने लायक होते हैं। उनका आत्मविश्वास चरम पर होता है तथा वे खूब सारे नए शब्द और नए अक्षर सीखने लगते हैं। इस समय वे निःसंकोच आसपास के बड़ों व दोस्तों की मदद लेते हैं और बहुत थोड़े समय में वे एक अच्छे पाठक बन जाते हैं। पता ही नहीं चल पाता कि एक दो वाक्य पढ़ते–पढ़ते कब वे पूरी कहानी पढ़ने लगे। पहले तो छोटी कहानियां, शायद वे जल्दी खत्म होती हैं और सारा सार सामने आ जाता है। पर धीरे–धीरे वे कुछ वाक्य वाली छोटी कहानियों से हटने लगते हैं और अब उन्हें थोड़े ज्यादा समय के लिए कहानियों की दुनिया में रहना है और अब उन्हें बड़ी, पन्ने दो पन्ने की कहानियां चाहिए हैं, और फिर! और बड़ी कहानियां। इन सब के समानांतर ही बच्चे छोटी व बड़ी कविताओं का लुत्फ भी लेते चलते हैं। कई दफा तो ये कविताएं उन्हें अक्षर–शब्द भंडार बनाने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। फिलहाल लेख या कथेतर साहित्य की भूमिका कविता–कहानियों की तुलना में कम ही दिखी हालांकि वे लगातार विभिन्न जगहों पर अपने सीमित संदर्भ के वास्तविक मुद्दों पर पढ़ते दिखते जरूर रहे

हैं। शायद अब वे इनकी मदद से अपनी दुनिया की समझ में इजाफा करेंगे।

दो महत्त्वपूर्ण अवलोकन : कोई भी बच्चा जिसने यहां पढ़ना सीखा है वह बगैर अर्थ समझे नहीं पढ़ता है। हां, जिन बच्चों ने पढ़ना सीखने में पिछले स्कूल या किसी अन्य जगह अक्षर ज्ञान के रास्ते भी सीखा है, वे कभी–कभी बिना समझ के भी पढ़ते दिखे पर अब कोई भी उस अवस्था में नहीं है। इस विधि से सीखे सारे बच्चों का पढ़ना एक प्रिय काम है। उन्हें किताबें अच्छी लगती हैं और वे खूब पढ़ते हैं।

लिखने का कौशल : कलम पकड़ने के साथ ही लिखना सीखना शुरू हो जाता है जो स्कूल के पहले से होने लगता है। बच्चा पहली बार, अनायास ही कलम फेरने से बनी कागज पर लाइन से अचंभित होता है। अब वह बार–बार कलम को फेरकर इस काम को दोहराता है। इसी प्रकार एक और मौका होता है जब इस दोहराव के काम के बीच एक खुली आकृति बन जाती है जो एक छोटी लाइन से बंद हो जाएगी। बस फिर क्या वह उसे बंद करने के लिए प्रयास करता जो एक बार में शायद नहीं होती है, अब उसे अपने हाथ पर थोड़ा नियंत्रण करने की जरूरत होगी। इस नियंत्रित हस्तकौशल में कला की अन्य विधाएं भी बहुत मदद करती हैं। अब जैसे–जैसे लिखित भाषा एक महत्वपूर्ण औजार के रूप में उभरने लगती है, वे उसकी तरफ खिंचने लगते हैं। वे पहले तो लिखे पर ही दुबारा कलम चलाते हैं। एक बात मैं दर्ज करुंगा कि जिस प्रकार अभिनय बोलना सीखने में काफी मददगार होता है ठीक वैसे ही चित्र की भी लिखना सीखने में खासी दखल होती है। एक बच्ची जिसे मैंने लिखे पर दोहराने के साथ देखा, उसने एक आकृति की किनारे की लाइनों पर छोटे–छोटे वृत्त बनाए थे। तो हो सकता है यह भी इसी का कोई रूप हो जब वे अपने नियंत्रित हस्तकौशल को अजमाते हों।

वे धीरे–धीरे एक दो शब्द नकल करके भी लिखने लगते हैं। सबसे पहला शब्द अमूमन उनका अपना ही नाम लिखते देखा है। शुरुआत में वे बहुत बड़ा–बड़ा व कुछ अस्पष्ट लिख पाते, पर फिर वे जल्द ही, तुलनात्मक रूप से छोटे व साफ अक्षर में लिखते हैं। अगले चरण में वे नए–नए शब्द लिखते हैं, जो उनके लिए महत्वपूर्ण या उनके ज्यादा संपर्क में आए होते हैं। अब वे एक दो अक्षर की अदला–बदली करके नए शब्द बनाते हैं। इन्हीं सब के बीच वे शब्द को मात्रा और अक्षर के संयोजन के रूप को भी समझने लगते हैं। अब उन्हें, उनके पास उपलब्ध मात्रा व अक्षर के संयोजन से नए पर अर्थपूर्ण शब्दों को ही लिखते देखा है। वे एक–दो शब्द के वाक्य भी लिखना शुरू कर देते हैं। फिर तो मिश्र वाक्य और फिर अर्थपूर्ण पैराग्राफ। भाषा की ग्रामर, सटीक अक्षर की लिखावट पर उनकी पकड़ अभी देर से आएगी। यहां पर देखा गया है कि उन्होंने कहानी–कविता की बजाए कथेतर लेखनी में इस हुनर को ज्यादा आजमाया है। मसलन ग्रीटिंग में, कोई सवाल, नोट व पत्र, यात्रा–वृतांत या कक्षा में क्या हुआ आदि। हो सकता है कि कहानी–कविता लिखने के मौके ज्यादा न रहें हों, ऐसा नहीं कि बिलकुल नहीं लिखी। अभी अंतहीन सीखना जारी है।

अब मैं रुकता हूं और ज्यादा सहज व बारीकी से इन सब चीजों को देखने–समझने के बाद इस पर आगे काम करूंगा।

प्रमोद मैथिल : एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े रहे। कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के सहयाद्री स्कूल, पूना में अध्यापन किया। आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल के संचालक हैं।

पोस्ट बेसिक के अनुभव

✧ मॉर्जरी सॉइक्स

अब तक आप ने जाना कि 1942 में पहले शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान का उद्घाटन किया गया। इस मौके पर प्रेम व सत्य इन दो मूल्यों पर जोर दिया गया। गांधी जी के निधन के बाद 1948 में सर्वोदय सम्मेलन व 1949 में ऐतिहासिक वर्ल्ड पैसिफिस्ट मीटिंग का आयोजन हुआ। 1949 के इस सम्मेलन में लोग राष्ट्रीय नीति में युद्ध को निषिद्ध घोषित करवाने के प्रति वचनबद्ध थे। चालीस के दशक के आखिरी व पचास के दशक के शुरूआत में नई तालीम समुदाय का जीवन्त केन्द्र बन चुका था। यही वह समय था जब लेखक स्वयं इस केन्द्र में शामिल हुए थे। यह शिक्षक प्रशिक्षण, साझा सांस्कृतिक विरासत और नये मूल्यों की शिक्षा हेतु संभावना–संपन्न केन्द्र के रूप में स्थापित हो रहा था। केन्द्र में गांधी जी की मूल कल्पनाओं के अनुरूप व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया जा रहा था। सेवाग्राम एक नवसमाज के निर्माण की दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा था। उसका प्रभाव आसपास के बच्चों पर सकारात्मक रूप से पड़ रहा था। 1955 तक आते–आते इन सकारात्मक प्रयासों में प्रशासनिक जड़ता बाधा बनने लगी, बावजूद इसके नये–नये प्रशिक्षु जुड़ते जा रहे थे। अब आगे...

1951 तक पोस्ट–बेसिक स्कूल ने कृषि और पशुपालन विषयों में तीन साल के दो पूर्णकालिक पाठ्यक्रम शुरू करने का फैसला ले लिया था। उनके अलावा तेल निकालने, खजूर का गुड़ बनाने और मधुमक्खी पालन जैसे कई मौसमी पाठ्यक्रम और उप पाठ्यक्रम भी शुरू किए गए। इन कामों के लिए 43.5 एकड़ जमीन दी गई थी। उसमें से कुछ जमीन पर सिंचाई की व्यवस्था थी जबकि बाकी जमीन सूखी थी, जिसे बारिश के पानी से ही सींचा जाता था। इसका उद्देश्य यह था कि करीब 85–90 लोगों का पोस्ट–बेसिक समुदाय खुद जमीन पर काम करे और अपने लिए अनाज तथा कपड़ों के लिए कपास पैदा कर सके। मवेशियों के चरने के लिए अलग से जमीन थी। पोस्ट–बेसिक विद्यार्थियों ने समूचे नई तालीम समुदाय की ओर से उत्पादकों और उपभोक्ताओं को मिला कर एक सहकारी डेयरी भी बना ली थी। उनके पास अपने मवेशी भी होते थे जिनकी देखभाल का जिम्मा उनके एक साल के पाठ्यक्रम का हिस्सा था।

अब पोस्ट–बेसिक समुदाय में बाहर से आए लड़के भी शामिल हो चुके थे जो उड़ीसा से बेसिक शिक्षा लेकर आए थे। विद्यार्थियों में 14 लड़कियां भी थीं। लड़के और लड़कियां अलग–अलग छात्रावासों में रहते थे। लड़के–लड़कियों को किसी भी तरह की विशिष्ट शिक्षा उनके अपने छात्रावासों में ही दी जाती थी जबकि सभी सामान्य पोस्ट–बेसिक पाठ्यक्रम लड़के और लड़कियों, दोनों के लिए समान रूप से उपलब्ध थे। कुछ लड़कियों ने पशुपालन में भी अपनी दक्षता का परिचय दिया। उनका प्रदर्शन काफी प्रभावशाली था। उनके

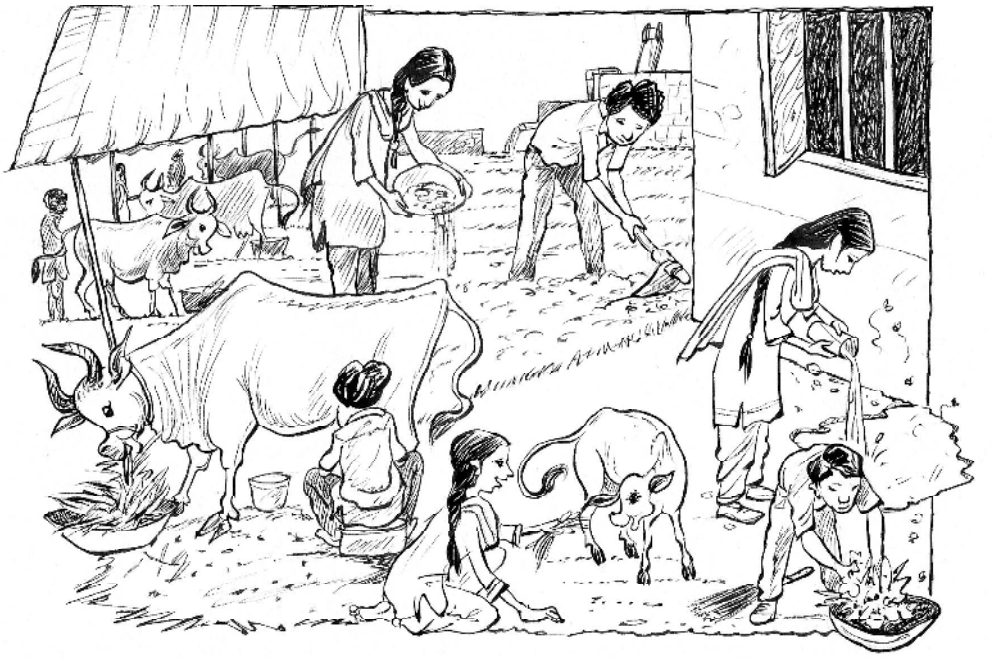

पास स्वतंत्र सोच और प्रेक्षण की क्षमता थी। स्वच्छता और पोषण के माध्यम से दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए परसाई जी द्वारा किए जा रहे प्रयासों में भी उन्होंने खासी दिलचस्पी दिखाई। एक लड़की ने चार–पांच गायों का विशेष अध्ययन किया और पाया कि एक साल के भीतर एक गाय का दुग्ध उत्पादन 18 पौंड से बढ़ कर 26 पौंड (12–13 लीटर) प्रतिदिन तक पहुंच गया था। गुजरात से आई एक आदिवासी छात्रा ने कहा था कि जब वह यहां आई थी उसे अपनी जिम्मेदारियां कितनी भारी लगी थीं। उसने लिखा, जब आप सोचना शुरू करते हैं, तभी आप सीखते हैं। और सीखने को तो किसी से भी सीखा जा सकता है, यहां तक कि नन्हें–नन्हें बछड़ों से भी। वे बिल्कुल बच्चों की तरह होते हैं। आपके प्रेम और देखभाल के प्रति फौरन प्रतिक्रिया देते हैं। उसने उनके नहाने–धोने और साफ–सफाई से जुड़ी कई महत्त्वपूर्ण बातों के बारे में लिखा था। और अंत में फिर उसने बच्चों से तुलना करते हुए लिखा कि उनके साथ भी बच्चों जैसा ही बरताव किया जाना चाहिए। उसने लिखा, 'उन्हें भी मजे लेने दो। उन्हें भी अपनी बालवाड़ी में एक बगीचा मिलना चाहिए!'

गौशाला में अपने प्रवास के दौरान पोस्ट–बेसिक विद्यार्थी पशुपालन के क्षेत्र में चल रहे अन्य प्रयोगों को समझने के लिए बाहर भी जाते रहते थे। इसी क्रम में उन्होंने नागपुर के सरकारी पशुपालन और मुर्गीपालन इकाइयों का भी दौरा किया। उनके पास जो व्यावहारिक अनुभव थे उनके सहारे वे इन प्रयोगों को बखूबी समझ सकते थे। वहां जाकर उन्होंने मवेशियों की प्रजातियों और उनके उत्पादन–प्रजनन के बारे में पूछा, रिकॉर्ड रखने की प्रक्रिया को समझा, उन्होंने बछड़ों को स्वयं दूध चूसने देने की बजाय हाथ से दूध पिलाने की नीति पर सवाल उठाए। कुल मिला कर उनका नजरिया काफी आलोचनापूर्ण था। उन्होंने देखा कि इमारतों पर तो खूब खर्च किया गया था जबकि स्वच्छता के नाम पर तमाम खामियां थीं। चारों तरफ मक्खी–मच्छरों का राज था। इन दौरों से उन्हें और भी कई चीजें सीखने को मिलीं। मसलन,

रेलवे स्टेशन तक पैदल चल कर जाएं तो पैसे बचाए जा सकते हैं (उस समय सबसे नजदीकी रेलवे स्टेशन वर्धा में ही था, तब सेवाग्राम स्टेशन नहीं बना था)। वे सस्ती और धीमी ट्रेनों से यात्रा करते और खुद अपना भोजन बना कर साथ ले जाते थे। उन्होंने राजपुरा और फरीदाबाद के अपने वरिष्ठों से यह सीख ली कि सामुदायिक जीवन का अनुशासन कहीं भी लागू किया जा सकता है। नागपुर में बिजली के बल्ब देख कर उन्हें बड़ा सुखद आश्चर्य होता था क्योंकि तब तक सेवाग्राम में बिजली नहीं पहुंची थी। लिहाजा, लालटेन जलाने की कला सेवाग्राम के किसी भी नवागंतुक के एजेंडा पर सबसे ऊपर होती थी ताकि पर्याप्त प्रकाश का इंतजाम किया जा सके। इस दौरान कृषि विद्यार्थी अपनी गलतियों से नए सबक हासिल कर रहे थे। एक साल ऐसा हुआ कि अनाज की घोर कमी पड़ गई जबकि कपास जरूरत से ज्यादा पैदा हो गया। इस असंतुलन को दुरुस्त करना जरूरी था। लड़कों ने जो कपास पैदा किया बाजार में उसके अच्छे दाम मिल रहे थे क्योंकि वे बड़ी सावधानी से कपास बीनते थे और वह साफ–सुथरा होता था। लेकिन यह तो पूंजी बाजार पर निर्भरता वाली बात थी। यह स्वावलंबन का मार्ग नहीं था। इसका मतलब है कि अभी उन्हें भू–संसाधनों के कुशल उपयोग और दोहन के बारे में बहुत कुछ सीखना बाकी था।

शांता बहन और सेगांव स्कूल के हेडमास्टर पंवारजी ने 1945–47 में जो कंपोस्ट पाखाने बनाए थे उनकी उपयोगिता के बारे में अध्ययन किया गया। सरकारी बायोकेमिस्ट का कहना था कि इन पाखानों में बना कंपोस्ट खाद गोबर के खाद से कमतर नहीं था लेकिन उसमें नाइट्रोजन की मात्रा कम थी क्योंकि सोख्ता गड्ढों को ढंकने के लिए बहुत ज्यादा मिट्टी और बहुत कम जैविक सामग्री का इस्तेमाल किया गया था। पोस्ट–बेसिक विद्यार्थियों ने शौचालयों की इस विकृति को दूर करने के लिए कदम उठाए और इसके बाद फसल उपचार के कुछ नए तरीके आजमाए। उन्होंने फसलों पर पानी और पेशाब के मिश्रण, पेशाब से गीली मिट्टी और शौचालयों में बने कंपोस्ट का इस्तेमाल किया। नतीजा यह हुआ कि बिना खाद वाली फसलों के मुकाबले सब्जियों का उत्पादन दोगुना हो गया। कपास की पैदावार में और भी ज्यादा सुधार आया। गोबर खाद के मुकाबले भी उत्पादन में 50 प्रतिशत इजाफा हुआ। उपज की गुणवत्ता भी सुधर गई। धनिए की डालियां अब जल्दी कठोर नहीं हो रही थीं और कच्चे सीताफल झड़ने बंद हो गए थे। उनकी गुणवत्ता और मात्रा दोनों में भारी सुधार आया। संतरे का उत्पादन भी बढ़ गया। इन सारे प्रयोगों का निचोड़ 1953 में एक पुस्तिका में संकलित किया गया जिसमें बरसों के ज्ञान के आधार पर ऐसे शौचालयों के निर्माण और रखरखाव के बारे में दिशानिर्देश – बरसों के सृजित ज्ञान पर आधारित थे।

बेसिक स्कूल की तरह पोस्ट–बेसिक स्कूल में भी कला को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था। पूरा सेवाग्राम समुदाय मौसमी, राष्ट्रीय और धार्मिक पर्वों को सामूहिक रूप से मनाता था। इन आयोजनों में राग–रंग, संगीत और खूबसूरत शब्दों के मिश्रण से बड़ा आकर्षक माहौल बनता था। 1949 के वर्ल्ड पैसिफिस्ट सम्मेलन में आए कई विदेशी मेहमानों का कहना था कि उन्होंने कभी क्रिसमस का इतना वास्तविक आयोजन नहीं देखा था। क्रिसमस की कहानी में प्राण फूंकने के लिए पोस्ट–बेसिक की गौशाला में गांव की सबसे छोटी बच्ची और उसके माता–पिता ने लालटेन की रोशनी में अभिनय किया था। ठीक इसी खूबसूरती से अयोध्या पूजा, दिवाली या पैगंबर मोहम्मद की जयंती मनायी जाती थी। इन उत्सवों पर एक पैसा नहीं खर्च किया जाता था। सिर्फ

कल्पना के फलक और मौसमी रंगों व सहज उपलब्ध चीजों के मिश्रण से ही हर मौके को विशिष्ट बना दिया जाता। इन उत्सवों की बागडोर आशा देवी और देवी प्रसाद जी के हाथों में होती थी। आशा देवी को भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से गहरा अनुराग था और उनके पास इन तीज–त्यौहारों का विशद् ज्ञान था। दूसरी ओर देवी प्रसाद भी अहिंसा के सिद्धांत को समर्पित कलाकार थे जिन्होंने विद्यार्थी जीवन के अपने दो साल शांति निकेतन में बिताए थे। उन पर गांधीजी और टैगोर, दोनों का समान प्रभाव था। ये उत्सव नई तालीम भवन के प्रशिक्षु शिक्षकों के लिए बिल्कुल अनूठे अनुभव थे। उनमें से अधिकतर ने आज तक शहरों का व्यावसायिक मनोरंजन ही देखा था। इस नए अनुभव से उन्होंने फौरन ही अपने लिए नए कार्यभार ढूंढ लिए। 1952 में उन्होंने खुद अपने बूते एक विशेष उत्सव का आयोजन किया। उन्होंने कुछ महीने में ही अपनी प्रधानाचार्या के लिए ग्रामीण शैली में दो कमरे का एक मकान तैयार कर दिया। निर्माण पूरा होने के बाद बड़े उत्साह से प्रधानाचार्या का सामान नए मकान में पहुंचाया गया। इसके बाद गीत–संगीत, पाठ और परंपरागत गृह प्रवेश की रस्म संपन्न की गई। हर साल ऐसे कई आयोजन होते थे। इन आयोजनों में यहां के सभी विद्यार्थियों के क्षेत्र की कला, संस्कृति और खान–पान की प्रस्तुति होती थी। 1951 में उत्तर बुनियादी भवन ने भारतीय इतिहास पर भारत की कथा नाम से एक नृत्य–नाटिका का आयोजन किया। इस काम में तकरीबन पूरा समुदाय शामिल था। युवा और वृद्ध, सभी ने अपनी–अपनी क्षमता के अनुसार अपना योगदान दिया। इस कार्यक्रम की योजना बनाने से लेकर उसे मंचन तक, हर चीज का अपना एक शैक्षणिक मूल्य था। उसे पहली बार नई तालीम सम्मेलन में अप्रैल 1951 में पेश किया गया। कुछ महीने बाद जब प्रधानमंत्री सेवाग्राम आए तो कुछ संशोधन करके उसे दोबारा प्रस्तुत किया गया। इसकी तीसरी संशोधित प्रस्तुति 1952 के नई तालीम सम्मेलन में की गई। इस किस्म के कार्यक्रमों की खूब सराहना होती थी और इनसे अन्य व्यक्तियों व संस्थानों को भी प्रेरणा मिलती थी। इन आयोजनों का सबसे बड़ा मूल्य यह था कि उसमें शामिल होने वाले सभी लोगों को इस विषय के बारे में नई शिक्षा और दृष्टि मिलती थी। शिक्षा के लिहाज से ऐसे बिंदु और भी महत्त्वपूर्ण होते थे जब कोई चीज गलत लीक पर चली जाती थी। ऐसे अवसर पर समुदाय को यह सीखने का मौका मिलता था कि व्यवहार में एक–दूसरे की कमियों की भरपाई करने का क्या मतलब होता है। मसलन, एक बार उत्तर बुनियादी भवन के खाते में महीने के आखिर में चौबीस रुपए की गड़बड़ पाई गई। जो लड़का खाता संभाल रहा था वह भी इस गड़बड़ी की वजह नहीं बता पा रहा था। लिहाजा, ये तय किया गया कि इस नुकसान की भरपाई करने के लिए उस लड़के को ओवरटाइम में कोई उत्पादक काम करना होगा। इसका नतीजा यह हुआ कि अगले महीने का खाता पाई–पाई सही पाया गया! एक दफे एक लड़के को गौशाला में भारी लापरवाही का जिम्मेदार पाया गया। यह मामला सिर्फ पैसे का नहीं था, इसमें पशुओं का जीवन भी दांव पर लगा हुआ था। इस समस्या को दूर करने के लिए फैसला लिया गया कि उसे गौशाला से हटा कर उसके दोस्तों और सहपाठियों से अलग किसी दूसरे काम पर भेजा जाए। अगली आम सभा में उसने सार्वजनिक रूप से अपनी गलती मानी और पूरे समुदाय से माफी मांगी। इसके बाद उसे वापस उसकी कक्षा टोली में ले लिया गया।

इस किस्म की गड़बड़ियों, झगड़े–फसाद, दुर्व्यवहार आदि पर समुदाय की नियमित बैठकों में चर्चा की जाती थी। हालांकि गलती करने वालों को

ये अच्छा नहीं लगता था कि उनकी गलती पर सार्वजनिक रूप से चर्चा हो मगर कुल मिला कर इसका असर अच्छा ही रहा। इससे लोगों को सही मुद्दों को समझने, जनमत या आम राय बनाने और सही–गलत को समझने में मदद मिली। व्यक्ति के प्रति समुदाय और समुदाय के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों को ऐसे रचनात्मक तनाव की स्थिति में ही समझा जा सकता है जब नागरिकों के बीच आदान–प्रदान और व्यावहारिक स्वशासन की स्थिति पैदा होती है। स्कूली लोकतंत्र के खट्टे–मीठे अनुभव और कानून व अनुशासन की हमारी समझ उसी इंसानी समाज, मनोविज्ञान और इतिहास के अध्ययन से विकसित होती है जो इस अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करती है। रचनात्मक तनाव की ऐसी ही एक और स्थिति है जिसका अनुभव उत्तर बुनियादी ने भी इन सालों में महसूस किया है। मनुष्य अपने जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपने आसपास की दुनिया का इस्तेमाल करता है, अपने वातावरण में मौजूद संसाधनों का दोहन करता है। उत्तर बुनियादी भवन भी एक समुदाय के रूप में यही सब कर रहा था। लेकिन दुनिया को देखने का एक तरीका और भी है। इस दुनिया को तटस्थ भाव से, खालिस प्रयोग के तौर पर भी जाना–बूझा जा सकता है। इससे भी आपको खुशी मिलती है और यह भी इंसानी अनुभव का ही एक हिस्सा है। इस लिहाज से दोनों तरीके एक–दूसरे को काटते नहीं हैं बल्कि एक–दूसरे के पूरक होते हैं। दुनिया को उसकी समग्रता में जानने के लिए काम और मनोरंजन, श्रम और आराम, खेती और रचनात्मक कला, दोनों पहलुओं की जरूरत पड़ती है। पोस्ट–बेसिक समुदाय के भीतरी द्वंद्वों में इस बात पर सहमति बना लेना इतना आसान नहीं था कि किसी लड़के या लड़की को उसकी पसंद के क्षेत्र, मसलन कला पर काम करने देने के लिए पेट भरने के वास्ते जरूरी रोजमर्रा के सामान्य सामुदायिक कामों से किस हद तक छूट दी जा सकती है। हमारे स्कूलों को चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियों को इन तनावों को समझने का मौका दें ताकि उनके विद्यार्थी दोनों नजरियों की वैधता को परख सकें। इसके बाद हरेक मामले को लगाव और उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से उठाया जा सकता है और एक तरह के कामकाजी समझौते पर पहुंचा जा सकता है। जी हां, एक अहिंसक समाज में समझौता बुरी बात नहीं होती है। पचास के दशक में सेवाग्राम के उत्तर बुनियादी भवन में रचनात्मक तनाव का ऐसा ही एक मामला कालिंदी जेना के रूप में सामने आया था। अब कालिंदी जेना सिरेमिक कलाकार के रूप में काफी मशहूर हो चुके हैं। अकादमिक जगत ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी लोग उनके हुनर को मान चुके हैं। उनके पास कोई औपचारिक प्रमाणपत्र नहीं है मगर अपने हाथों में छिपे कलात्मक सौंदर्य और हुनर से उन्होंने अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी है। वर्ल्ड पैसिफिस्ट सम्मेलन के अपने अनुभवों के बारे में इंग्लैंड के विल्फ्रेड वेलॉक ने कहा था कि शिक्षा का मकसद यह होना चाहिए कि व्यक्ति को जीने की कला सिखाई जाए और उसमें कला के हर पहलू को उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए। फिर भी बुनियादी गतिविधि तो काम ही है क्योंकि यह हमारी भौतिक जरूरतों को पूरा करता है, मनुष्य को सृजनशील बनाता है और यह हमारी आध्यात्मिक, मानसिक व शारीरिक शक्तियों को उत्तेजित करता है जो काम के हरेक स्वरूप में विश्राम, ध्यान और आनंद के माध्यम से तरो–ताजा होती जाती हैं।

क्रमशः..

.

साभार : नई तालीम की कहानी से। मॉर्जरी सॉइक्स (1988), नई तालीम की कहानी, अनुवाद : श्री प्रकाश, क्षेत्रीय प्रारंभिक शिक्षा संसाधन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

मिस आऊनोस् न्

✧ स्निग्धा दास

अक्सर होता है कि विभिन्न मुद्दों पर हम अपने विचारों को ई–ग्रुप में साझा करते रहते हैं। एक साथी ने एक कहानी 'फ्यूल का सोना' समूह में साझा की, यह कहानी जिसमें एक बच्चे टिबेट की प्रतिभा को शिक्षक पहचानकर भी मान्यता नहीं देता बल्कि उसकी प्रतिभा के बलबूते पर खुद नाम कमाना चाहता था। इस कहानी को पढ़ते हुए लेखिका को एकाएक अपने जीवन की एक अविस्मरणीय घटना याद आ गई जो आज यहां साझा की जा रही है। अगर इस प्रकार के अनुभवों को आप भी लिखें और हमें भेजेंगे तो हम प्रकाशित करेंगे।

बात 1984 की है जब मेरे पति अमलान सिक्किम में स्थानांतरित हुए और हम मय परिवार वहां चले गए। हिमालय की गर्वोन्नत चोटियों और घने सागौन के पेड़ों से लदी हुई पहाड़ियों के बीच बसा था यह कस्बा 'रंगपो'। विश्वविद्यालय परिसर कस्बे से किनारे था। परिसर के ठीक बगल से इन विराट पहाड़ों के बीच से नटखट–चंचल, उछलती–कूदती, गाती कभी तेज तो कभी मद्धिम लय में तीस्ता बहती थी। कोई उदास व्यक्ति भी इसे देखे तो वह बरबस मुस्कुरा देगा। अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य से लबरेज था पूर्वी सिक्किम का यह हिस्सा!

यह एक छोटा सा कस्बा है, आसपास औद्योगिकीकरण भी हो रहा था। विशेषकर दवा के उद्योग लग रहे थे। जिनके खिलाफ कभी–कभी विरोध के स्वर भी सुनाई पड़ते थे – खासकर कारखानों से पैदा होने वाले ड्रग के समाज पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव को लेकर।

मैंने कस्बे से दूर पश्चिमी सिक्किम के छोटे से मिडिल स्कूल में पढ़ाना शुरू किया। घर से स्कूल जाने के लिए स्कूल बस ही एक मात्र साधन था जो मुझे स्कूल से थोड़ी दूर पर छोड़ देती थी और थोड़ी सी चढ़ाई के बाद स्कूल आ जाता था। मुझे कक्षा पांच में पढ़ाने का अवसर मिला। अक्सर टीचर रूम में कक्षा चार के एक बच्चे जोसेफ का जिक्र हमारे सहकर्मी किया करते थे। चर्चा क्या, सिर्फ शिकायतें ही सुनने को मिलती थीं। अरे वह कभी कक्षा कार्य पूरा नहीं करता, गृह कार्य भी नहीं करता। उसके एक पुराने अध्यापक ने बताया कि उसे कभी भी 20 प्रतिशत से ज्यादा अंक नहीं मिले। ग्रेस मार्क्स से उसे उत्तीर्ण किया गया था।

एक दूसरे सहकर्मी ने जो शायद उसे ज्यादा जानते थे, रहस्योद्घाटन करते हुए बताने लगे कि, 'वह ड्रग एडिक्ट है!' मैं चौंकी! और सोच में पड़ गई कि जोसेफ जो महज 10 साल का था 'ड्रग एडिक्ट' है। मैंने कभी किसी ड्रग एडिक्ट को नहीं देखा था। कैसे दिखते हैं ये, मेरी उत्सुकता बढ़ गई। एक और सहकर्मी ने उसका चित्रात्मक वर्णन करते हुए बोले कि, उसकी नींद से भरी हुई, ला ऽ ल –ला ऽऽ ल आंखें, सुस्ती, कक्षा में लापरवाही!

ये सभी बताती हैं कि वह ड्रग एडिक्ट है। मैं सोचने लगी कि ऐसा नहीं हो सकता! सहकर्मियों की बातें विश्वास योग्य नहीं हैं। मैं अविश्वास की एक नज़र अपने सहकर्मियों पर डालते हुए कमरे से बाहर निकल आई और एक नज़र मैंने सामने की पहाड़ी पर डाली जिस् पर बादल उमड़–घुमड़ रहे थे, फिर घर जाने के लिए बस की ओर चल दी। मानाकि मैंने थोड़ा–सा ही समय स्कूल में बिताया है, लेकिन मैंने कभी उसे सुस्त नहीं पाया, उसकी आंखों को ला ऽ ल –ला ऽ ऽ ल तो मैंने कभी नहीं पाया, लेकिन मैं उसकी शिक्षिका भी नहीं हूं । मैं अपने आप से बात कर रही थी, कि एकाएक अखबारों में दवा कम्पनियों के विरोध की खबरें याद हो आईं, क्या है उसकी पारिवारिक स्थिति, क्यों बन गई है–उसकी ऐसी छवि? मां! कहां खोई गई हो। अरे! कब मैं बस से उतर कर अपने घर पहुंच गई पता ही नहीं चला!

खैर कुछ महीने बाद, अब वह मेरी कक्षा का विद्यार्थी हो गया। आज कक्षा पांच के नए सत्र का पहला दिन था। मैं कक्षा में गई, तो पाया कि शिक्षक की मेज के किनारे रखे गुलदान में जतन से फूल सजाये हुए थे। मैं खुश हुई और बच्चों से कहा, फूल के लिए धन्यवाद! सभी बच्चों की निगाहें कमरे के कोने की ओर मुड़ गई। मैने देखा कि वहां जोसफ बैठा हुआ है। मैं समझ गई कि ये फूल जोसेफ ने ही रखे हैं। धन्यवाद जोसेफ! उसका चेहरा खिल उठा! यह वही बच्चा है, जिसे स्कूल में सबसे ज्यादा दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। सिर्फ इसलिए कि किसी शिक्षक का निर्धारित गृहकार्य या कुछ रटने का काम यह कर नहीं पाता है।

मुझे अध्यापक कक्ष में जोसेफ के बारे हुई बातचीत को लेकर मन में प्रतिकार रहा और उसका खिला हुआ चेहरा सभी बच्चों की ओर अधिक ध्यान देने को प्रेरित किया। बच्चे मुझे हमेशा से प्यारे लगते हैं। जोसेफ को अपनी कक्षा में पिछले एक महीने से देख रही हूं। रोज वह मेरी मेज़ के गुलदान में फूल सजा देता और मैं कक्षा में घुसते ही जोसेफ को कहती ''बड़ा सुंदर फूल है!'' जोसेफ का मन खुश हो जाता। बस उसका चेहरा देखने लायक होता। उसकी बालसुलभ आंखें चमक उठती और चेहरा खिल उठता था। उसकी निश्छल सुंदरता मुझे स्फूर्ति से भर देती और अधिक से अधिक काम करने को प्रेरित करती। मुझे अचरज होता कि क्यों मेरे सहकर्मी उसे ड्रग एडिक्ट समझते हैं? क्यों छोटे से गृहकार्य न कर पाने को इसकी अयोग्यता

मानते हैं? सिर्फ गृहकार्य या कक्षाकार्य कर लेना ही योग्यता का मापन तो नहीं है। मैं मन ही मन विचार करती। उसने मुझे कभी शिकायत का मौका नहीं दिया या यह कहूं कि कभी उसने ऐसा कुछ नहीं किया जिसे मैं शिकायत समझती। मैं कक्षा पांच के पहले कालांश में अंग्रेजी की कक्षा लेती थी। गृहकार्य के रूप में बच्चों की इच्छानुसार कोई चित्र बनाना तथा उसका वर्णन लिखना या अपना पसंदीदा चित्र चिपकाकर उसका वर्णन करना या किसी भी अपने पसंद के विषय पर कुछ पंक्तियां लिखना या पढ़े गए पाठ में से कक्षा में उनके द्वारा चुने गए कुछ (6 या 8) शब्दों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाना।

जोसेफ हमेशा कुछ न कुछ लिखता था। कभी–कभी उसके लिखे कई वाक्य बिल्कुल पढ़ने लायक नहीं होते और वर्तनी में कईं गलतियां (रूढ़िवादी सोच के अनुसार) रहती थीं। मगर कुल मिलाकर पूरे अनुच्छेद से कुछ न कुछ पढ़ने के लायक और समझने लायक बातें लिखे रहता था। कभी वह अपनी मां और सौतेले पिता द्वारा चलाई जाने वाली चाय की दुकान की बातें लिखता, तो कभी दुकान के सामने के पर्वत के बारे में। कभी वह अपनी छोटी बहन के बारे में लिखता तो, कभी अपने दोस्तों के बारे में। कभी अगर जल्दबाजी में किया हुआ काम अधूरा रहता तो उसके चेहरे पर काम पूरा न कर पाने की ग्लानि साफ दिखती थी।

इधर कई दिनों से मैं देख रही थी कि वह अधूरा काम कर पाता है। मैंने सोचा कि शायद घर पर ज्यादा काम की वजह से ऐसा हो रहा हो। लेकिन आज मैंने फिर उसका अधूरा काम देखा तो मन में शंका हुई कि क्या बात है। मैंने उसके चेहरे पर गौर से नजर डाली तो भौचक्क रह गई! उसके चेहरे पर बेधड़क मार से हुए चोट साफ दिख रहे थे। मैंने पूछा क्या हुआ? वह चुप रहा। मैंने उसके आसपास रहने वाले बच्चों से बात की तो पता चला कि उसका सौतेला पिता उसे बेरहमी से पीटता है। दूसरे दिन फिर मैंने उसके चेहरे पर और पीठ पर सरिया से मारने के चोट देखे। मुझसे नहीं रहा गया। मैंने इसका जिक्र प्रधानाध्यापिका से किया। बातचीत के बाद यह तय किया गया कि जोसेफ के यहां जाना जरूरी है।

मैंने मन ही मन यह तय किया कि मैं जोसेफ के घर जरूर जाऊंगी और पता करूंगी कि वहां क्या चल रहा है। वैसे हमारे कुछ शिक्षक जो उसके गांव में रहते थे, और जोसेफ के घर का दौरा कर चुके थे। उन्होंने बताया ''जोसेफ अपने मां–बाप को बहुत तंग करता है और ड्रग भी लेता है।''

मैं अपनी अंग्रेजी की क्लास नियमित लेती रही। एक दिन जोसेफ स्कूल नहीं आया। मेरा मन शंका से भर उठा। जोसेफ जो कभी अनुपस्थित नहीं रहता, वह आज स्कूल क्यों नहीं आया। मैंने उसके पड़ोस में रहने वाले बच्चों से पता किया। बच्चों ने हिचकिचाते हुए बताया कि गांव में पुलिस का छापा पड़ा था। 'जोसेफ, उसके पिता और गांव के कुछ अन्य लोगों को ड्रग के साथ पकड़ा गया।' और पुलिस वाले उसे थाना ले गए। मेरा सर चकरा गया। नहीं, मेरा विश्वास धोखा नहीं दे सकता, जोसेफ ड्रग एडिक्ट नहीं हो सकता। मैंने कक्षा में सीखने–सिखाने का काम पूरा किया और शिक्षक कक्ष में चली आई। इस ख्याल से कि इस समस्या का कोई सकारात्मक हल निकल आए।

यहां शिक्षकों में जोसेफ की घटना पर ही चर्चा चल रही थी। जोसेफ के गांव से आने वाले शिक्षक काफी उच्च आवाज में यह जताने में लगे थे कि कैसे उन्होंने पहले से ही प्रधानाध्यापिका को इस बारे में आगाह कर दिया था। अब यह पूरे स्कूल के लिए कि कितनी शर्मनाक बात है कि यहां

का बच्चा पुलिस द्वारा पकड़ा गया, बोलते–बोलते वे बिफर उठे! थोड़ी देर रुक कर बोले, वो भी ड्रग के साथ। मैं कुछ नहीं बोली। मेरा भी मन अवसाद से भर उठा।

कुछ ही दिनों बाद जोसेफ स्कूल लौटा। स्कूल में सभी ने उससे पूछा कि, उसे क्यों पुलिस थाना जाना पड़ा? जोसेफ चुप ही रहा। उसने जवाब में कुछ नहीं कहा। मैंने मन में सोच लिया था कि मैं उन हालातों को जोसेफ से ही समझूंगी लेकिन समय आने पर। इस घटना के बाद मैं उसका और ध्यान रखने लगी। टिफिन के समय मैं उसके साथ स्कूल के मैदान के कोने में बैठ जाती और उससे बातें करती। जोसेफ भी मुझसे खुल कर बातें करता और बातें करते वक्त उसे खुशी व संतोष मिलता। उसे खुश देख मुझे भी खुशी मिलती।

काफी समय बाद टिफिन करते हुए मैं उससे पूछ बैठी कि आखिर क्यों उसे पुलिस पकड़कर ले गई थी? जोसेफ फफक उठा और रोते–रोते बताया ''पिछले तीन सालों से उसके पिता उसे चाय की दुकान से ग्राहकों तक ड्रग ले जाने का काम करवाते थे।'' मैंने उसे शांत कराया। लोग तुम्हें गलत समझते हैं, तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। वह शांत हो गया।

मैंने ये बातें प्रधानाध्यापिका को बताई और कल जोसेफ के घर जाने के लिए इजाजत चाही। उन्होंने कहा, नहीं मैं खुद तुम्हारे साथ उसके घर चलूंगी। दूसरे दिन हम स्कूल में आकर जोसेफ के घर के लिए चल पड़े। हम घर पहुंचे तो उसके पिता घर पर नहीं मिले, फिर हमने उनकी चाय की दुकान पर देखा, जोसेफ के पिता वहां भी नहीं मिले। फिर हमने जोसेफ की मां के पास खबर छोड़ी कि जोसेफ के पिता को स्कूल जरूर भेजें। कई दिन हो गए मगर जोसेफ के पिता नहीं आए। हमने कई बार खबर भिजवाई, लेकिन वे कभी नहीं आए।

देखते–देखते लगभग साल निकल गया। आज भी रोज की तरह मेज पर फूल जरूर था, लेकिन जोसेफ का चेहरा कक्षा में नहीं दिखा। मैं इस डर से सशंकित हो उठी कि पता नहीं इस बार भी शायद पुलिस न उठा ले गई हो, अरे नहीं शायद मेरे मन का वहम् हो, बच्चा ही है! मैंने मन में सोचा। लेकिन जब तीन–चार दिन हो गए और जोसेफ स्कूल नहीं आया तो मन की शंका विश्वास में बदल गई कि जरूर कुछ हुआ है। और फिर मैंने बच्चों से पता किया तो पता चला कि, उसके पिता ने उस पर गरम चाय फेंक दी थी। जिससे उसके हाथ का कुछ हिस्सा और पीठ जल गई थी। वह

अभी सरकारी अस्पताल में भर्ती था। मैंने इस घटना को शिक्षक कक्ष में सभी को बताई और दूसरे दिन प्रधानाध्यापिका और मैं अस्पताल में जोसेफ से मिलने जा पहुंचे। मैंने देखा कि जोसेफ के आंखों में आंसू बह रहे थे। उसकी मां उसके पास थी और खूब रो रही थी। मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था। तभी वह बोल पड़ा– ''मिस, मैं कल स्कूल जरूर आऊंगा।''

एक हफ्ते बाद जोसेफ स्कूल आ गया। पूरी तरह से ठीक होने में कुछ समय लगा। कुछ ही दिनों बाद एक दिन, एकाएक टिफिन के साथ जोसेफ रोता हुआ तेजी से स्कूल से भाग निकला। हम सब उसके पीछे भागे, क्योंकि सुनने में आया था उसके मां–बाप गांव छोड़कर जा चुके हैं। जब हम उसके घर पहुंचे तो जोसेफ पागलों की तरह अपनी मां को बुलाता रहा और रोता रहा। हमने देखा कि चाय की दुकान और घर दोनों में ताला लगा था। जोसेफ को उसके माता–पिता ने छोड़ दिया था।

स्कूल ने फैसला किया कि जोसेफ अब स्कूल में ही रहेगा और अपनी पढ़ाई जारी रखेगा। उसके बाद से जोसेफ स्कूल में ही रहने लगा और पढ़ाई की तरफ ध्यान देने लगा। वक्त गुजरता रहा, पर अचानक एक दिन मेरे पति दुर्घटना के शिकार हो गए, मुझे स्कूल से छुट्टी लेनी पड़ी, मेरे पति की देखभाल करने वाला कोई और नहीं था, मेरा बच्चा भी अभी छोटा था। प्रधानाध्यापिका और हमारे अन्य सहयोगी के साथ जोसेफ भी अस्पताल में आया था। उसने मेरे पति और मुझे ध्यान से देखा, हमें देखकर उदास हो गया और खड़े–खड़े कुछ सोचने लगा। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद जोसेफ मेरे पास आ गया, उसने मेरे दोनों हाथों को पकड़कर कहा – मिस प्लीज, स्कूल आऊनोस् न् ... मेरे मां–बाप ने मुझे छोड़ा, फिर भी मैं स्कूल में रहता हूं और आप जब तक स्कूल आओगे तब तक ही मैं स्कूल में आऊंगा। उसकी आंखों में आंसू तैर गए और वह धीरे–धीरे अस्पताल से वापस चला गया।

उसे देख मैं भी भावुक हो गई। जोसेफ के जाते हुए उसकी पीठ मुझे दिखाई पड़ रही थी, उसकी कही गई बातों ने मुझ में गरिमा से भर दिया। जाते–जाते उसने मुझे यह एहसास दिलाया कि उसके मन में मेरा भी कोई स्थान था।

मैं स्कूल को चाहते हुए भी असहाय महसूस कर रही थी। मुझे छः महीने तक अस्पताल में रहना पड़ा। और छः महीने के बाद आज मैं पहली बार बच्चों से मिलने स्कूल जा रही थी। पता नहीं जोसेफ कैसा होगा? क्या मेरे सहकर्मियों ने उसका ख्याल किया होगा? हां क्यों नहीं, जरूर किया होगा, अब उसकी सच्चाई तो सब जानते हैं। मैंने खुद से अपने सवाल का जवाब दिया। मेरा स्कूल सामने दिखने लगा तो मैं तेज कदमों से स्कूल की तरफ बढ़ी। स्कूल में घुसते ही बच्चे चिल्ला पड़े – मिस आ गई, मिस आ गई! मै तेजी से उनके नजदीक पहुंच गई। पहुंचते ही उनसे पूछ पड़ी, जोसेफ कहां है? वह तो स्कूल से भाग गया! मैं अवाक् रह गई। ''मिस आऊनोस् न्...'' अस्पताल में कहें उसके ये वाक्य मेरे कानों में गूंजते रहे...!

स्निग्धा दास : विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर में कार्यरत।

रचनात्मकता : बच्चों का अधिकार

✧ नरेंद्र 'नंद'

बात की शुरुआत जॉन होल्ट की उस पत्र से करते है जिसे उन्होंने डॉ. ब्लिस को लिखा था – ''प्रिय डॉ. ब्लिस... मेरी राय में बच्चे तभी सबसे अच्छा सीखते हैं जब वो किसी चीज को अपने से सीखना चाहते हैं। वो खुद ही निर्णय लेते है कि कब और कैसे सीखेंगे। वे किसी चीज को किसी के कहने से नहीं खुद की जिज्ञासा शांति करने के लिए सीखते हैं। मुझे लगता है कि अगर हम आज के बोझिल पाठ्यक्रम को आंशिक या पूरी तरह से हटा देंगे तो उससे सीखने कि प्रक्रिया बहुत बेहतर होगी। मुझे परीक्षाओं आदि की, सीखने में उपयोगिता समझ मे नहीं आती, उल्टा ये सब सीखने मे बाधा उत्पन्न करती हैं। स्कूलों मे अक्सर बच्चों को उनके क्षमता के अनुरूप अलग– अलग समूहों में विभाजित करना भी सीखने की क्षमता में बाधक है, मैं इसके पूरी तरह खिलाफ हूं। मुझे लगता है कि शिक्षण की प्रक्रिया ही बाधक होती है सीखने में, वो भी विशेषकर पढ़ने में। मेरी राय में शिक्षा बच्चों और नौजवानों की दुनिया में प्रवेश करने और उपयोगी कार्य करने में सहायता कर सकती है, परंतु हमने शिक्षा को बहुत बड़ा रोड़ा बनाकर खड़ा कर दिया है तो हमें इस बाधा को दूर करने के उपाय भी ढूंढने चाहिए। मेरी राय में हमें हरेक बच्चे और उसके द्वारा किए जाने वाले किसी भी उपयोगी सामाजिक या रचनात्मक कार्यों के बीच की सभी बाधाओं को हटा देना चाहिए। हम जो कुछ भी कहते हैं उसके द्वारा, सीखने और जीवन को पृथक कर देते हैं जबकि हमें उन्हें जोड़ने का प्रयास करना चाहिए।''

– जॉन होल्ट

शुरू–शुरू में मैं जब इन बातों को पढ़ता था तो मन में एक दुविधा बनी रहती थी कि क्या वाकई इस तरह से शिक्षण का माहौल व्यवहार में उतर पाएगा या फिर ये किताबी बातें हैं। लेकिन जॉन होल्ट का यह उद्धरण मेरे मन को छू–गया था। मैंने कई और शिक्षा साहित्य का अनुशीलन किया जिसमें परिवेश से सीखना, रचनात्मक व चुनौतीपूर्ण अवसरों से सीखना जैसे विचारों को प्रस्तुत किया गया था। इसी क्रम में मैंने एनसीएफ 2005 का भी अध्ययन किया जिसका भाग दो 2.4. 1 ज्ञान सृजन के लिए अध्यापन आज भी याद है–जिसमें 'रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में सीखना ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया है, के सहित 'ज्ञान निर्माण के लिए अध्यापन' के संदर्भ में काफी कुछ कहा गया है। यह हमारी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा है जिसका आशय है कि हमें इन विचारों को व्यवहार में उतारना है। मैं इसे करके देखूंगा। मैंने अपने को संकल्पबद्ध किया और अपनी कक्षा में इसकी शुरूआत

की। पहला परिणाम मिला–जुला रहा, कुछ बच्चों को काफी मजा आया और उन्होंने खुलकर भागीदारी निभाई और कुछ छात्रों के लिए यह पहले जैसा ही था या फिर इसका कारण मैं नहीं ढूंढ पाया। लेकिन इसने धीरे–धीरे मेरे साहस को बढ़ाया और फिर एक नई यात्रा की शुरूआत हुई। धीरे–धीरे मेरा आत्मविश्वास बढ़ने लगा और महसूस हुआ कि यही स्वाभाविक रास्ता है सीखने–सिखाने का! मुझे स्वयं अपने बच्चों की क्षमताओं का अहसास हुआ और उससे भी बहुत कुछ सीखा। उनके सोचने–समझने और कहने के तरीकों की जानकारी मिली और इन्हीं जानकारियों से उन्हें किन तरीकों से विचारों को या विषय वस्तु को कैसे संप्रेषित किया जाए की चुनौती आ उपस्थित हुई। इस चुनौती ने मुझे अपने विषय ज्ञान का आकलन करने और अपने ज्ञान को बच्चों के अनुरूप प्रस्तुत करने का अवसर व अभ्यास उपलब्ध कराया। फिर तो यह कब जीवन का हिस्सा बन गई पता ही नहीं चला।

और आज मेरे सामाने जब ये बच्चे बड़े उत्साह के साथ कार्यशाला में भागीदारी और नये विचारों को प्रस्तुत कर रहे हैं और बाल सुलभ नैसर्गिकता के साथ बेहद प्रसन्न दिख रहे हैं तो बरबस मुझे अपना पहला कदम याद हो आया।

मैं बात कर रहा हूं पिछले दिनों छत्तीसगढ़, धमतरी ब्लाक के बोडरा संकुल के शासकीय प्राथमिक शाला डाही के शिक्षक साथियों के प्रयास की। उन्होंने ग्रीष्मकालीन अवकाश के अंतिम और शाला शुरू होने के तीन दिन पहले 'तीन दिवसीय रचनात्मक गतिविधि शिविर' का आयोजन किया था, बच्चों में ललक पैदा करने वाली गतिविधि और क्रियाकलापों को करने के लिए। उनका यह प्रयास था कि बच्चों की शाला शुरू होने के पहले ही सीखने–सिखाने के लिए रचनात्मक वातावरण का निर्माण करना और बच्चों को नैसर्गिक व मौलिक रूप में सीखने के लिए प्रेरित करना।

मैंने शिक्षक साथियों से पूछा कि यह आप लोगों को क्या सूझा? सभी साथी शिक्षक मुस्करा दिये। दरअसल उन्हें भी इसका एहसास एक प्रक्रिया में हुआ था। सर! अब बच्चों के साथ–साथ हमें भी अपने इस कार्य से सकारात्मकता का अहसाह होता है। हां तो हम क्या करेंगे? सर आप ही ने एक बार कहा था कि रचनात्मक तरीके से की जाने वाली शिक्षा का कोई नियत स्वरूप तो नहीं होता है मगर चारों ओर की चुनौती को स्वीकार करने का अवसर देता है और यही अवसर लीक से हटकर कुछ सोचने के लिए मजबूर करता है और यहीं से शुरू होती है रचनात्मक तरकीबों की एक नई शुरुआत।

हमने सोचा कि बच्चे अपना अधिकतर समय खेलने में व्यतीत करते हैं। अगर इन खेलों के स्वरूप में कुछ परिवर्तन कर दें तो सृजनात्मकता का पुट परिलक्षित होता दिखाई दे सकता है। फिर हमने कार्यशाला में किए जाने वाले क्रियाकलापों को तय किया।

पहले दिन कुल 90 बच्चों ने भागीदारी की। हमने पुराने अखबारों को इकट्ठा कर रखा था। आज हम इसका कुछ उपयोग करेंगे। हम इसका क्या उपयोग कर सकते हैं? सर, ये तो रद्दी है। इससे परचून की दुकान पर समान लपेट कर देता है। इससे हम अपनी किताबों पर जिल्द चढ़ा सकते हैं– 'बीच में बैठे एक बच्चे ने कहा।' और क्या–क्या कर सकते हैं? सभी प्रतिभागी बच्चे आपस में खुसर–फुसर करने लगे। चलिए, इसे आज हम अपने सिर का ताज बनाएंगे। ऐं! अइ! ओ! बच्चे चौंके। मतलब कि हम इससे तरह – तरह की टोपी बनाएंगे। एक पूरे अखबार को बारीकी के साथ मोड़ना और कोनों को व्यवस्थित ढंग से मिलाना और मिलाकर मन चाहे रूप से राजा का मुकुट, फौजी की टोपी,बावर्ची की टोपी

के अलावा नेता जी वाली शालीन टोपी का निर्माण करना बच्चों ने सीखा। बच्चों को खूब मजा आ रहा था। बच्चे अपनी मनपसंद टोपियों को बना रहे थे। उनकी तल्लीनता और खुशी देख कर बरबस जॉन होल्ट की कही बात याद आ गई। क्या यह अपने आप में एक गणितीय संक्रियाओं के समायोजन की तरह सीखने का अवसर नहीं दे रहा था? फिर शुरू हुआ टोपियों को मनचाहे रंगों से रंगना। कोई तितली और मोर के प्राकृतिक रंगों का समायोजन कर रहा था तो कोई कछुआ और कबूतर बना रहा था। बच्चे काफी मशगूल थे अपनी–अपनी टोपियों को रंगने में...। पहले दिन यही चलता रहा ।

आश्चर्य तो तब हुआ, जब दूसरे दिन सभी के सिर पर छोटी–बड़ी, रंग–रंगीली टोपियां सबके सिर पर थी। जबकि आज पिछले दिन से 40–50 अधिक थे। बच्चों ने कल की सारी गतिविधियों पर अपनी राय रखी। ''अखबार आज से पहले बेकार ही माना जाता रहा है पर यह सिर का ताज बन सकता है, हमें यकीन नहीं था, यह कहना था शिविर मे उपस्थित डिकेश्वर, पिंकी, मोहिनी और खिलेश का।'' खुश तो सभी बच्चे थे। हमने नए बच्चों से पूछा कि आप लोगों को टोपी बनाना किसने सिखाया जो आप लोग अपने सिर पर रखे हैं? सभी बच्चों ने पहले दिन शामिल बच्चों को बताया। हमारे लिए यह सबसे अच्छी बात थी कि पहले दिन सीखने वाले बच्चे दूसरे दिन आने वालों को पूर्ण रूपेण दक्ष बना चुके थे। सहयोगात्मक सीखने का भाव और आपस में सृजनात्मकता को बांटना क्या इसे नहीं कहेंगे?

इसी तरह दीवार पर मनचाहे रंगों से मन की अभिव्यक्ति को आकार देना, अपनी उंगली और अंगूठे के सहारे नवीनाकृति बनाना, रंगों से उन्मुक्त रंगोली को मढ़ना और बाल अभिनय गीत, एक अद्‌भुत अनुभूति रही।

इसके साथ ही भाषा विकास के लिए हमने कहानी सुनना और उन पर बातें करना और नाटकीय रूपांतरण की गतिविधि की। हमारा उद्देश्य बच्चों में कुछ ढूंढने, तर्क करने, आरोपण करने, भविष्यवाणी करने और संबंध बैठाने जैसे कौशलों का विकास करना है।

इसके बाद क्या, क्यों, कौन, कैसे, कहां और किस तरह के सवालों के साथ आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करना एक और दिशा की ओर ले जाता है।

हमें बार–बार एहसास होता है कि बच्चों का अपना ही संसार है और इस दशा में केवल उन्हें मौका चाहिए। फिर देखें, कितनी लंबी उड़ान भर पाते हैं और यह केवल मैं ही नहीं कह रहा हूं बल्कि कार्यशाला में आए बच्चे अपने व्यवहार से साबित कर रहे थे। रचनात्मक गतिविधि शिविर में आए बच्चों के सामने अलग–अलग दिन के शेड्यूल के अनुसार अपने विचारों को अभिव्यक्ति करने का अवसर मिला। बच्चों को इस दौरान कुछ भी कहने–करने की छूट थी और ये मौका उन्हें पहली बार शायद इन शिक्षकों ने उपलब्ध करवाया था, वरना कक्षा में हमेशा नियम, अनुशासन, कालखंड से बंधे रहते थे। पर ये स्वतंत्रता बच्चों को काफी भा रही थी। इसी का परिणाम था कि कोई दीवार पर मन चाहे चित्र बना रहा था, तो कुछ मोम और स्केच से अपनी कल्पना को रंग रहा था। किसी ने ऑरीगेमी के माध्यम से मकान और सोफ़े जैसी आकृति को एक रूप दिया, कुछ बच्चे विज्ञान के प्रयोग तो कुछ अपनी ऊंचाई माप कर अलग–अलग स्थानों मे कुछ आकारों को बना कर अपनी अभिव्यक्ति को एक स्वरूप दे पा रहे थे। कुछ बिंदुओं को मिलाकर नए चित्रों का निर्माण कर रहे थे, तो कुछ बने हुए चित्रों में मन पसंद रंग भर रहे थे।

बाल अभिनय गीत बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ावा देने में काफी कारगर तरीके हो सकते है। इस दिशा में पूरे दिन अलग–अलग बातों को उल्लेखित करते हुए बच्चों ने काफी रोचक तरीके से बाल गीतों का आनन्द उठाया ।

रचनात्मक अभिव्यक्ति को एक सबल रूप देने के लिए मौलिक लेखन की गतिविधि ने भी अपनी सशक्त भूमिका निभाई। इस शिविर में प्रमुख रूप से चार बिंदुओं पर स्वतंत्र और मौलिक लेखन किए –अगर मेरे पास 100 रुपए होते, मेरा मन करता है।, दुनिया कैसे बनी।, अगर स्कूल नहीं होते तो क्या होता। इन पर जब बच्चों ने अपने विचार लिख कर सबके सामने प्रस्तुत किए तो लग नहीं रहा था की बच्चों ने अपनी बात रखी है। क्योंकि अवसर ही था कि मन में जो बातें चल रही हैं वे कह सकें। हम शिक्षक तो केवल एक गाइड की तरह अपनी भूमिका अदा कर रहे थे।

गतिविधियां जो रचनात्मकता को बढ़ावा दें :

नाटक – बच्चों में निश्चय ही प्रदर्शन करने का गुण विद्यमान होता है और अगर कुछ समय के लिए बच्चों से मिलकर अभ्यास किया जाय तो वे आत्मविश्वास के साथ अन्य बच्चों और अपने माता–पिता के सामने प्रदर्शित करने का माद्दा रखते हैं, इसके लिए नाटक प्रदर्शन सबसे उपयुक्त तरीका होता है। अभिनय के लिए एक स्वच्छंद सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। सृजनात्मक नाटक का अपना अलग ही महत्व होता है और सृजनात्मक नाटक, औपचारिक नाटक की तैयारी का सर्वश्रेष्ठ माध्यम बन पाता है। इससे प्रशिक्षित लोग, औपचारिक नाटक में भी उसी कल्पनाशक्ति का परिचय दे पाते हैं, जो सृजनात्मक नाटक के प्रदर्शन में उनकी विशेषता मानी जाती है। चूंकि सृजनात्मक नाटक में बच्चों के साथ काम करने वालों के अनुसार बच्चे उतने ही स्वाभाविक तरीके से अन्य चरित्रों की भूमिका निभाने एवं अन्य दशाओं में अभिनय भी उतना ही प्रशंसनीय है जितने उनके द्वारा बनाए गए चित्र या फिर मिट्टी के नमूने। कठपुतली– कई तरह की कठपुतलियां जैसे शंकु कठपुतली, उचकती कठपुतली, दिन रात की कठपुतली, डंडी कठपुतली, कागज की कठपुतली, मुखौटे पुतली, गत्ते की पुतली, समाचार पत्र से बनी दंड पुतली, हथेली पुतली, जुराब से बनी पुतली, छाया पुतली, मेज पर स्थायी पुतली, धागे से संचालित पुतली, मुखौटे वाली पुतली, नारियल के खोल वाली पुतली वास्तव में बच्चों की रचनात्मकता के महत्वपूर्ण चरणों में से एक है। इसके अलावा नमूने या पैटर्न, आकृति और स्वरूप, शरीर की बाहरी रेखाएं, चार भुजावाली आकृति, रंगोली के पैटर्न, त्रि–आयामी, कहानियां, तुकबंदी कविताएं, संख्या कहानी, पुस्तक बनाना, बिंदुकृत आकृति बनाना, मुखौटे बनाना, तिल्ली कंकड़, बीज, स्वतंत्र लेखन, कांच की चूड़ी से आकृति बनाना, पंख, कौड़ी, रेत, कोयला, पत्तियां, लकड़ी की छाल, कागज, विभिन्न वस्तुओं के खाली डिब्बे, कोलाज, थंब, थ्रेड और मिट्टी से बनाने वाली कलाकृति के अलावा ऐसी चीजें रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती हैं।

शिक्षण में रचनात्मकता का समावेशन

शिक्षा से छात्र को व्यक्तिगत चिंतन के अवसर मिलने चाहिए, जो लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण है। शिक्षा का दायित्व व्यक्तित्व का विकास करना है। अगर शिक्षा सृजनात्मक हो तो वे व्यक्तित्व विकास मे सहायक हो सकती हैं, प्रत्येक बच्चे में कल्पना और सृजनात्मक योग्यता होती है परंतु बहुधा इन गुणों को ईश्वरीय देन समझ कर ऐसा मान लिया जाता है यह गिने चुने व्यक्तियों को ही प्राप्त होते हैं। जबकि बच्चों को ऐसे संवेदनशील जनों से प्रोत्साहन की जरूरत है जो कि सृजनात्मक प्रक्रिया को समझता हो। नाटक एक ऐसा उत्कृष्ट साधन है जो शिक्षक को बच्चों के साथ अपनत्व की भावना को मजबूती प्रदान करने के लिए सशक्त भूमिका अदा करता है। मुख्यतया सृजनात्मक नाटक से– 1. समूह में व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा मिलता है। 2. मन और शरीर में समन्वय स्थापित करता है। 3. पात्रों का अभिनय बच्चों को स्वस्थ स्व–अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करता है। 4. मानवीय आचरण के श्रेष्ठ मूल्यों के साथ सहसंबंध होता है। 5. सृजनात्मक नाटक आनंददायक होता है। कहानी का अपना एक अलग ही महत्व है जो रचनात्मकता को अभिव्यक्त करती है। कथा–कहानी कहना सदा से आनंददायी गतिविधि रही है। ये आज ही नहीं सदियों से चली आ रही हैं। कहानी जीवन की कई लोमहर्षक दशाओं को भी दिखाती है जो हमें निर्णय लेने मदद करती हैं। शिक्षण की दृष्टि से कहानी कहने का एक अलग ही उद्देश्य है जिसे भाषा शुद्धि के लिए भी उपयोग में लाया जा सकता है। परियोजना कार्य के तहत शिक्षण का उद्देश्य मुख्य रूप से स्वतंत्र विचार के लिए मौका देना है।

अगर रचनात्मकता की मूल आत्मा पर नजर डालें तो मन की कल्पना को मूर्त रूप देना है जिससे अभिव्यक्ति का संचार हो। हर किसी की आंतरिक शक्ति को जागृत कर एक सृजनात्मक अभिव्यक्ति के संसार की ओर प्रेरित करना होगा ताकि बचपन की घटित घटनाओं के मूल रूप को अंगीकार कर सकें ताकि कलाओं की कल्पना रचनात्मक सोच–विचार को विकसित करने के अतिरिक्त उचित रीति से प्रयोग किया जाए जो भूगोल, इतिहास, भाषा और सामाजिक विज्ञान के अध्यापकों के लिए भी उपयोगी हो सकता है ।

आज मैं जब अपनी शिक्षकीय जीवन–यात्रा के इस पड़ाव पर हूं तो मुझे अपने शुरूआती कदम और दुविधा याद आती है जो मैंने आप से साझा की। अपने इन्हीं अनुभवों के आधार पर मैं अपने सभी शिक्षक साथियों से अपील करना चाहता हूं कि आप इस दिशा में अपना कदम आगे बढ़ाएं, यही सही रास्ता है। ऐसा करते हुए दो बातों का जरूर ध्यान रखें– पहली –गतिविधियां जो रचनात्मकता को बढ़ावा दें, दूसरी –शिक्षण मे रचनात्मकता का समावेशन करें, परिणाम सुखद होगा।

नरेन्द्र "नन्द" : अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, जिला संस्थान, धमतरी (छत्तीसगढ़)

पुस्तकालय प्रशिक्षण ऐसा भी

✧ उषा पानेरी

केन्द्र प्रवर्तित योजना (सी.टी.ई.) के अंतर्गत पुस्तकालयाध्यक्षों की पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन करना था। यह दूसरी कार्यशाला थी जिसका हमें समन्वयक बनाया गया था। इससे पूर्व पिछले साल हम एक कार्यशाला करवा चुके थे। पिछली कार्यशाला का अनुभव ज्यादा अच्छा नहीं रहा क्योंकि वह एक तरफा थी। उसमें जो जानकारियां दी गईं वे हमारे हिसाब से थीं तो बहुत अच्छी लेकिन प्रतिभागियों के स्तर के अनुकूल नहीं थीं। कार्यशाला में जिन भी मुद्दों पर बात हुई उनका विद्यालय की गतिविधियों से कोई तालमेल नहीं था। इसलिए हमारे सामने इस बार यह चुनौती थी कि इन पुस्तकालयाध्यक्षों को विद्यालय स्तर के पुस्तकालय के लिए तैयार करने हेतु प्रशिक्षण के दौरान किन–किन मुद्दों पर चर्चा हो, ताकि प्रशिक्षण और सार्थक हो सके।

सबसे पहले पिछले वर्ष हुई कार्यशाला के फीडबैक प्रपत्र निकाले गए और यह पता करने की कोशिश की गई कि वास्तव में पुस्तकालयाध्यक्षों की बुनियादी आवश्यकताएं क्या थीं? अधिकांश फीडबैक प्रपत्र में लिखा था कि कार्यशाला में प्रतिभागियों को नए–नए विषयों, पुस्तकालय बजट, डीजिटल लाइब्रेरी, ई–बुक्स, आदि से संबंधित जानकारी प्राप्त हुई व कुछ समझ बनी कि पुस्तकालय में इनका प्रयोग कैसे हो? लेकिन उनके स्वयं के पुस्तकालय के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए यह जानकारी बहुत महत्वपूर्ण नहीं है और ना ही उपयुक्त क्योंकि वहां की परिस्थितियां बहुत भिन्न हैं। अतः इन्हें अपने पुस्तकालय में प्रयोग नहीं कर सकते। कार्यशाला में बहुत अच्छे व्याख्यान भी हुए लेकिन वे सभी विश्वविद्यालय स्तर के थे, उनका विद्यालय के पुस्तकालय से कोई जुड़ाव नहीं दिखा। पुस्तकालय तथा पुस्तकों के रखरखाव के बारे में बताया गया लेकिन हमारे विद्यालय में न तो पुस्तकालय है न ही उनसे संबंधित पुस्तकें। इंटरनेट से पुस्तकें कैसे पढ़ सकते हैं अथवा मंगवा सकते हैं, इसकी हमें जानकारी तो मिली लेकिन हमारे स्कूलों में तो यह सुविधा है ही नहीं। हम तो विषय अध्यापक हैं।

जब हमारे विद्यालय में पुस्तकालय ही नहीं है तो पुस्तकालयाध्यक्ष होने का तो सवाल ही नहीं उठता। ऊपर से आदेश आता है और हमें प्रशिक्षण लेने के लिए भेज दिया जाता है।

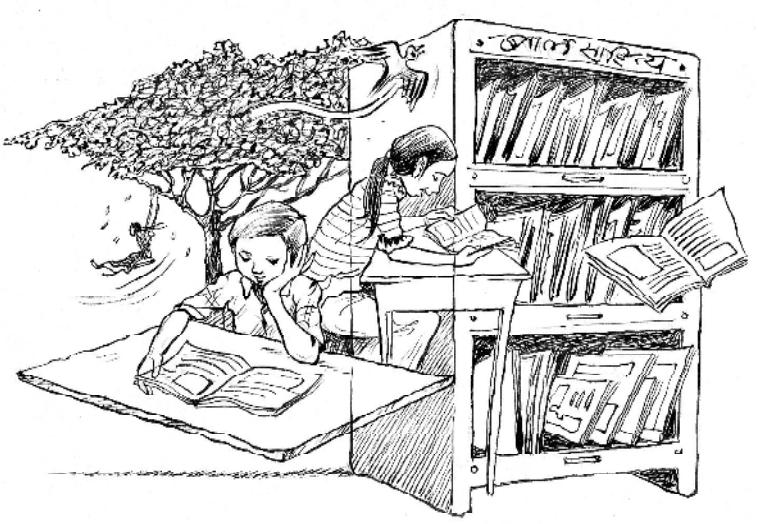

इन सभी बातों के आधार पर निर्णय लिया गया कि इस बार कार्यशाला में कुछ बदलाव किया जाए। अर्थात संभागियों को उनके विद्यालय की स्थितियों के आधार पर मौके उपलब्ध करवाए जाएं और व्याख्यान कम से कम रखे जाएं। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा गया कि चाहे संभागी विषय अध्यापक हो लेकिन उन्हें पुस्तकालय इस्तेमाल की सामान्य जानकारी अवश्य हो पाए। प्रशिक्षण में उन लोगों को बुलाया जाए जो विद्यालय स्तर पर बच्चों के साथ पुस्तकालय पर काम कर रहे हैं। हमने ऐसी संस्थाओं और लोगों से संपर्क किया गया जो बाल साहित्य एवं पुस्तकालय के क्षेत्र में विद्यालयों से लंबे समय से जुड़े हुए थे। विद्या भवन की ही एक अन्य संस्था शिक्षा संदर्भ केंद्र कच्ची बस्ती के स्कूलों में इस तरह का प्रयास कर रही है। केंद्र ने पुस्तकालय का 6 महीने का एक कोर्स भी डिजाइन किया है। साथ ही केंद्र विभिन्न स्कूल एवं गैर सरकारी संस्थाओं के लिए कार्यशालाएं भी आयोजित करता है। उनके साथ मिल कर कार्यशाला की कार्य योजना तैयार की गई। कार्यशाला के उद्देश्य निम्न लिखित रखे गए–

- वर्तमान समय में पुस्तकालय में स्थित चुनौतियां एवं संभावनाएं।
- बच्चों को बाल साहित्य की ओर आकर्षित करना।
- पुस्तकालय, कर्मचारियों, पाठक एवं समाज के बीच सहभागिता कैसे बढ़े? इस बारे में समझ बनाना।
- पुस्तकालय समितियों, मापदंडों, अधिनियमों, पद दायित्व के बारे में समझ बनाना।
- सूचना प्रौद्योगिकी का पुस्तकालय में उपयोग।

पांच दिवसीय कार्यशाला में करीब 20 सत्र रखे गए। सत्रों के संचालन की जिम्मेदारी आपस में अलग–अलग समूहों में बांट ली गईं। जैसे–

- एक समूह ने पुस्तकालय की अवधारणा से संबंधित पठनसामग्री ढूंढी
- एक अन्य ने बाल साहित्य ढूंढा
- पुस्तकालय के क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं को खोजा
- इंटरनेट पर कहां अच्छा बाल साहित्य मिल सकता है उसकी साईट ढूंढ कर सूची बनाई।
- संभागियों के लिए विद्या भवन द्वारा संचालित मोबाइल लाइब्रेरी की विजिट तय की।

कार्यशाला में कुल 20 संभागियों ने भाग लिया। प्रथम दिन प्रथम सत्र में संभागियों से बातचीत की गई कि वे पुस्तकालय के बारे में क्या सोचते हैं, उनके विद्यालयों में पुस्तकालय की क्या स्थिति है? इस बातचीत के दौरान यह बात भी निकल कर आई कि कुछ संभागी द्वितीय श्रेणी अध्यापक हैं जो अलग–अलग विषय पढ़ाते हैं। वास्तव में उनके पास पुस्तकालय की कोई डिग्री नहीं है। उन्हें मात्र पुस्तकालय का चार्ज सौंप रखा है। कार्यशाला में भी उन्हें जबरदस्ती भेज दिया गया है। जाहिर था कि वे पुस्तकालय को उतनी गंभीरता से नहीं लेते। जो पुस्तकालय अध्यक्ष हैं वे भी विभिन्न कारणों से पुस्तकालय को गंभीरता से नहीं लेते क्योंकि विद्यालय में उन्हें मौके नहीं मिलते।

यहां संभागियों की समझ बनाने की कोशिश की गई कि प्रत्येक विषय के अध्यापक को एक कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष होना चाहिए ताकि वह अपने विषय से संबंधित संदर्भ पुस्तकों के चयन में बच्चों की मदद कर सके। इसके बाद उन्होंने अपने विद्यालय की कई कमियों को गिनाना शुरू किया। उन्होंने बताया कि विद्यालयों में पुस्तकालय की स्थिति अच्छी नहीं है। या तो पर्याप्त किताबें नहीं हैं और यदि हैं भी तो वे बच्चों के स्तर की नहीं हैं। ये किताबें बच्चों की पहुंच से भी बाहर हैं। विद्यालय में पुस्तकालय का पीरियड तो होता ही नहीं है। पढ़ाई मात्र पाठ्यपुस्तक केंद्रित होती है। प्रधानाध्यापक का पूरा जोर भी पहले कोर्स पूरा करवाने पर रहता है। बच्चों को किताबों की पहुंच से दूर रखने के पीछे उनकी धारणा होती है कि, 'बच्चे किताबों को फाड़ देते हैं, गुम कर देते हैं।' इसके अलावा प्रतिभागियों की अपनी भी बहुत सी समस्याएं थी जैसे– पुस्तकालय बजट बहुत कम होता है, स्टाफ की कमी, संसाधनों की कमी, अन्य स्टाफ या अधिकारी का सहयोग प्राप्त नहीं, सूचना तकनीकी का ज्ञान प्राप्त नहीं, विद्यार्थियों की अरुचि, पुस्तकालय भवन ही उपलब्ध नहीं आदि।

उनकी बातों को ध्यान से सुना गया और नोट किया गया तथा कहा कि इन पांच दिनों में हम इन सभी मुद्दों पर ही बातचीत करेंगे।

साथ ही पिछली कार्यशाला से कुछ बातें ठोस रूप से उभर कर आईं जिनके आधार पर पुस्तकालय एवं पुस्तकालयाध्यक्ष के क्या कार्य हैं और वह भी विद्यालय महाविद्यालय का अभिन्न हिस्सा है, इस बारे में समझ बनानी थी। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए रणनीति तय की गई व निम्न मुद्दों पर बातचीत की गई–

हमें पुस्तकालय की जरूरत क्यों है, पुस्तकालय का अर्थ क्या है, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 के अनुसार पुस्तकालय की अवधारणा, एक अच्छा पुस्तकालय क्या होता है, विद्यालय में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर एक पुस्तकालय बनाना, पुस्तकालय का विकेंद्रीकरण, महत्वपूर्ण बाल साहित्य एवं उनके साथ गतिविधियां, बाल साहित्य का अर्थ, अलग–अलग तरह के पुस्तकालय एवं पुस्तकालयाध्यक्षों की भूमिका, पुस्तकालय में ई–संसाधनों का उपयोग, संदर्भ सर्विस, पुस्तकालय संचालन में चुनौतियां आदि। कार्यशाला में बातचीत का जो तरीका अपनाया उसमें मुख्यतः समूह में कार्य करना व फिर उसे प्रस्तुत करना व फिर प्रस्तुतीकरण में आये प्रश्नों पर सहमति/असहमति के बिंदुओं पर बात करना व अंत में मुख्य बिंदुओं को रेखांकित करना था।

जैसे– समूहों में सीमित समय और सामग्री से पुस्तकालय का निर्माण। इससे संभागियों की समझ विकसित हुई कि सीमित संसाधनों की उपलब्धता में भी पुस्तकालय का उपयोग कर सकते हैं। कैसे कहानी के माध्यम से बच्चों को

पुस्तकालय की ओर आकर्षित किया जा सकता है। यहां प्रतिभागियों को कई कहानियां सुनाई गईं। इनमें प्रेमचंद की कहानियां, काल्पनिक कहानियां, प्रेरणाप्रद कहानियां और सत्य घटनाओं पर आधारित कहानियां शामिल थीं। प्रतिभागियों ने समझा कि हम कहानी, कविता के माध्यम से बच्चों में कैसे समझ बढ़ा सकते हैं। पढ़ने के प्रति कैसे रुचि विकसित कर सकते हैं। कार्यशाला के दौरान मोबाइल पुस्तकालय का अवलोकन भी किया गया।

इस पांच दिवसीयकार्यशाला में कुछ बातें ठोस रूप से उभर कर आई जिनके आधार पर संभागियों के मन में पुस्तकालय के प्रति जो धारणाएं थीं तथा जो समस्याएं थीं उन्हें कुछ हद तक हल करने की कोशिश की जैसे–

- सभी स्कूलों में पुस्तकालयाध्यक्ष, अध्यापकों को एनसीएफ की जानकारी देना ही नहीं है बल्कि उन्हें यह बताना कि स्कूलों में एनसीएफ पुस्तकालय के संबंध में कैसे अहम भूमिका निभा सकता है।
- पुस्तकालय में किताबों का केवल संग्रह ना हो बल्कि किताबें आकर्षक, जीवंत रुचिपूर्ण एवं गतिशील होनी चाहिए।
- पुस्तकें चयन करते समय ऐसे अनेक व्यक्तियों को जोड़ा जाए जो बाल साहित्य के प्रति संवेदनशील हों।
- यदि किसी विद्यालय में बजट की समस्या हो तो पुस्तकालयाध्यक्ष किसी संस्था, अधिकारी या अन्य स्कूलों से किताबें या कुछ राशि डोनेट करने की व्यवस्था कर सकता है।
- विद्यालय द्वारा मोबाईल लाईब्रेरी की व्यवस्था की जा सकती है।
- विद्यालय में पुस्तकालयों के लिए भवन का अभाव है तो हम टेबल रीडिंग रूम लाइब्रेरी का विचार अपना सकते हैं।
- टेबल रिडिंग रूम लाइब्रेरी व्यवस्था कहीं बगीचे में, पेड़ के नीचे या कहीं मैदान में रख कर बच्चों को आकर्षित कर सकते हैं।
- शिक्षकों को भी चाहिए कि वे विद्यार्थियों को पूरे समय तक पढ़ाते रहने का अपना मोह छोड़कर उन्हें पुस्तकालय में जाने की अधिक से अधिक स्वतंत्रता दें।
- जिस समय विद्यार्थी पुस्तकालय में जाए शिक्षक या पुस्तकालयाध्यक्ष एक अच्छे ग्रंथपाल की भूमिका निभाएं और कौनसे विद्यार्थी को कौनसी पुस्तक की आवश्यकता है और उसकी रुचि कौनसी पुस्तक में है आदि की जानकारी प्राप्त करें।
- शिक्षकों को भी यह पहल करनी पड़ेगी कि विद्यालय के बाहर भी पुस्तकालय की व्यवस्था की जाए।

इस प्रकार इस बार पहले की तुलना में संभागी ज्यादा संतुष्ट नजर आए। उनका फीडबैक भी सकारात्मक था और वे पुस्तकालय की एक नई समझ के साथ अपने विद्यालय गए।

उषा पानेरी : विद्या भवन बी.एस.टी.सी. में पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

परीक्षा लो और बच्चों को बाहर करो

✧ फ़ैज कुरैसी

''यार मैं तो फेल हो गया, फिर से साल भर। पापा चिढ़ कर कह रहे हैं कि कोई गेरिज पर काम सीखने चला जाउं। 50–60 रूपया रोज तो मिलेगा''। ये वंचित या निम्न मध्यम वर्ग के एक बच्चे की जीवन में यकायक आ जाने वाली घटना से उपजे संवाद हैं। ये संवाद और समस्या इस बच्चे या इस जैसे लाखों बच्चों के जीवन में साल दर साल घटती रहती है, जिसके दोषी सदैव से ही ये बच्चे माने जाते रहे हैं। इस परिघटना को गंभीरता से लेते हुए नीति निर्धारकों ने कक्षा 1 से 8 तक के बच्चों को किसी कक्षा में ना रोके जाने के लिए आरटीई–2009 में सख़्त लहजे में प्रावधान किए। इस प्रावधान में स्पष्ट रूप से लिखा गया कि आरंभिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8 तक) पूर्ण होने तक किसी भी बच्चे को किसी भी कक्षा में रोका नहीं जाएगा। इसके साथ अगले अनुच्छेद में स्पष्ट किया गया कि – छात्र का वर्ष भर की कक्षागत और विद्यालयी प्रक्रियाओं का सतत एवं व्यापक मूल्यांकन किया जाएगा। यह मूल्यांकन परंपरागत परीक्षा से काफी अलग है।

आरटीई 2009 के लगभग चार साल पूरे होते–होते कई राज्यों में कक्षा 5 और 8 की बोर्ड परीक्षाएं पुनः आरंभ किए जाने की पुरज़ोर वकालत नीति निर्धारकों (जनता के प्रतिनिधि, ब्यूरोक्रेट्स, प्रबुद्धवर्ग, आदि) के मार्फत होना आरंभ हो चुकी हैं। इस वकालत के कई निहितार्थ हैं या सामान्य से इन्टरप्रिटेशन हैं, जो कई पूर्वाग्रहों से भरे हुए और शिक्षकों की स्वायत्ता छीनने के साथ–साथ इस पूरे समूह के कार्यशैली/क्षमता पर प्रश्न चिन्ह भी लगाते हैं। कुछ सतही और सामने दिखाई देने वाले पूर्वाग्रहों पर चर्चा करें तो– पहला, यह कि परीक्षा ही अकादमिक गुणवत्ता बढ़ा सकती है फिर चाहे यह व्यवस्था सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के कितना ही विपरीत क्यों न हो। दूसरा, परीक्षा न होने के कारण शिक्षकों ने शिक्षण करना बंद–सा कर दिया है और वे लापरवाह हो गए हैं। तीसरा, यह कि सभी बच्चों के लगातार पास होने के कारण बड़ी कक्षाओं में कमजोर बच्चे पहुंच रहे हैं, आदि। संभवतः कुछ इसी तरह के पूर्वाग्रहों के आधार पर परंपरागत परीक्षा विशेषकर बोर्ड परीक्षा को पुनः आरंभ करने की वकालत की जा रही हैं।

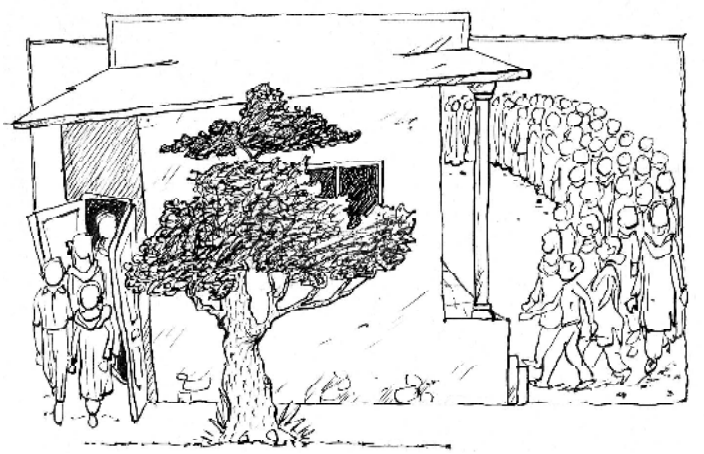

इस सन्दर्भ में हमें यह भी याद रखना चाहिए कि विगत 100 से अधिक वर्षों से हम परीक्षा ही तो लेते आए हैं। यदि परीक्षा से ही शिक्षा की गुणवत्ता सुधरती तो आज हम इस मुकाम पर नहीं पहुंचते। यदि हम परीक्षा पर फिर एक नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि हम कक्षा 5 और 8 में (या किसी भी कक्षा में) बोर्ड परीक्षा लेकर बच्चों को उसी कक्षा में रोकते ही हैं और इस तंत्र से बाहर धकेलते हैं। क्या कोई विस्तृत अध्ययन यह भी बताता है कि कक्षा 5 या 8 में पास हुए बच्चे और रोके हुए बच्चे के सीखे गए में क्या अंतर है। ऐसा कोई विस्तृत अध्ययन होता तो वह यह सिद्ध ही करता कि दोनों तरह के बच्चों की कुछ खास विशेषताएं हैं जिन्हें, एक व्यवस्था के नाते हम समझ ही नहीं पाए हैं।

दरअसल इस वकालत के पीछे कथित प्रबुद्ध वर्ग की मंशा में कोई समस्या नहीं दिखाई देती वरन् उनकी चिंता ही दिखाई देती है। क्योंकि कई सारी रिपोर्ट्स, शिक्षकों के अनुभव, पालकों की बातें आदि कई कारण हैं जो उन्हें इस प्रकार से आदेशित–निर्देशित करने को बाध्य करती हैं। ये रिपोर्ट्स और अनुभव एक बड़ी बात कहते हैं, कि हमारे छात्रों के ''लर्निंग लेवल'' (जिन्हें अचिवमेंट लेवल भी कहा जाता है) उनकी कक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं या कहें कि कक्षा 7 के बच्चे कक्षा 4 की अपेक्षित दक्षताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

इस बात के पीछे के कुछ कारणों की पड़ताल करके नीति निर्धारकों को भी कोई यह नहीं समझा पा रहा कि इन गिरते लर्निंग लेवल को मात्र बोर्ड परीक्षा लेकर नहीं सुधारा जा सकता। किसी प्रशिक्षण में एक शिक्षक ने गुस्से से कहा था – ''सर, कोई तो इन्हें समझा दो कि बस आदेश दे देने से बच्चों के लर्निंग लेवल नहीं सुधरते, लम्बे समय उनके हिसाब से पढ़ाना पढ़ता है''। यदि हम नीति निर्धारकों को ये बता पाएं कि मात्र परीक्षा से शिक्षण में आमूलचूल परिवर्तन और वह भी रातों रात नहीं लाया जा सकता।

लर्निंग लेवल बढ़ाने या शिक्षा में गुणवत्ता लाए जाने के लिए हमें कई स्तरों पर काम करने की ज़रूरत है और वे संभावित स्तर हैं – पाठ्यपुस्तकों का खुद समझ में आने वाली शैली में गढ़ा जाना, इन्हीं पुस्तकों में बच्चों को कुछ करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किया जाना, शिक्षण की शैली को रचनावादी शिक्षण के लिहाज़ से किया जाना, विषयों का अध्यापन विषयों की प्रकृति के मान से किया जाना, आदि। इसके इतर सभी विद्यालयों में कक्षा और विषय के मान से शिक्षकों की व्यवस्था, विद्यालय में लाईब्रेरी की उपलब्धता और उपयोग किया जाना, शिक्षक प्रशिक्षण को व्यवहारिक रूप में किया जाना आदि। और इन सबके साथ परीक्षा के स्थान पर ''सतत एवं व्यापक मूल्यांकन'' की अवधारणा को उसकी मंशानुरूप लागू किया जाना।

आरटीई 2009 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन को वैधानिक मान्यता देता है। इसके कुछ प्रायोजन ऐसे हैं –

- धारा 16 – स्कूल में भर्ती किसी भी बच्चे को किसी भी कक्षा में रोका नहीं जाएगा, जब तक कि वह प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण न कर ले।
- 29(एच) अकादमिक (एकेडमिक) प्राधिकारी सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को सुनिश्चित कराएंगे और यह भी ध्यान रखेंगे कि बच्चे द्वारा अर्जित ज्ञान और उसके व्यवहारिक उपयोग की क्षमता की जांच हो सके।
- 30(1) प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने तक किसी भी बच्चे को बोर्ड परीक्षा पास करने की ज़रूरत नहीं होगी।

जो बात आरटीई 2009 कहता है वही बात लगभग पिछले 40 वर्षों से देश के विभिन्न दस्तावेज करते आए हैं, फिर चाहे वह कोठारी कमीशन हो, शिक्षा नीति 1968 हो या एनसीएफ 2005 हो। ये

सभी दस्तावेज शिक्षा में अकादमिक स्तर को बढ़ाने तथा किसी बच्चे के सर्वांगींण विकास को सुनिश्चित करने की वकालत करते हैं। जिनके अनुसार वे ''सतत एवं व्यापक मूल्यांकन'' को एक बेहतर विकल्प के रूप में सुझाते हैं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन वर्तमान में ऐसा विषय है जिससे लगभग हर शिक्षक, विद्यालय, एकेडमिशियन, प्रशासन और शिक्षा की चिंता करने वाले प्रत्येक व्यक्ति जूझ रहे हैं। वर्ष 2007 में सीबीएसई ने इसे प्रयोग में लाना आरंभ किया और 2014 तक ये देश के लगभग सभी विद्यालयों में क्रियान्वित होने लगा है। इसका क्रियान्वयन किसी एक ही सेन्ट्रलाईज़्ड तरीके से नहीं हो रहा क्योंकि अभी तक सभी प्रकार के लोग इसे समझने की प्रक्रिया में ही हैं। और यह एक बेहतर स्थिति है कि विभिन्न संस्थान अपनी स्वायत्ता और समझ के अनुसार इसे उपयोग करने का प्रयास कर रहे हैं।

एक शैक्षिक कार्यकर्ता होने के नाते, कुछ साथियों की मदद से यह समझने का प्रयास किया है कि ''सतत एवं व्यापक मूल्यांकन'' का क्रियान्वयन क्यों इतना जटिल हो रहा है। यह समझ कुछ बिन्दुओं की तरफ इशारा करती है वे इस तरह है–

- सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का प्रचलित तरीका जो कि मात्र आदेशों और निर्देशों से ही संचालित किया जा रहा है (अभी तक सभी शिक्षकों का इस पर प्रशिक्षण भी नहीं हुआ है) शिक्षकों को यह तो बताता है कि उन्हें कुछ करना है। मगर ये नहीं बताता कि कैसे करना है, इसे करने के लिए किस तरह की समझ और संसाधनों की ज़रूरत होगी । उदाहरण के तौर पर शिक्षकों ने बच्चों का पोर्टफोलियो बनाना और उसमें बच्चों की कृतियों को संजोना आरंभ किया है जो कि प्रशंसनीय है किन्तु इसके आगे क्या किया जाना है इसकी उन्हें जानकारी नहीं है।
- कई बोर्ड्स और विद्यालयों ने अपने आदेशों को परीक्षा को सरल बनाने के लिए जारी किया। जो आकलन के दो विशेष तरीके भी सुझाते हैं जिन्हें समेटिव्ह और फार्मेटिव्ह आकलन से संबोधित किया जाता है। इसकी परिणति यह हो रही है कि कई विद्यालय माह में 2 बार टेस्ट लेते हैं, फिर मासिक परीक्षा, फिर अर्द्धवार्षिक परीक्षा और अंत में वार्षिक परीक्षा। इस तरह से शिक्षकों और बच्चों पर परीक्षा का बोझ घटाने की जगह बढ़ा रहे हैं और शिक्षकों में असंतोष पैदा कर रहे हैं।
- कुछ आदेश–निर्देश बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने के लिए हैं – इस संर्वांगीण विकास को देखें तो हम पाएंगे कि इसे तीन मोटे खाकों में बांटा गया है। पहला शैक्षिक जो कि पूर्णतः पाठ्यक्रम माना जा रहा है। दूसरा है सह शैक्षिक, इसे शिक्षण के साथ की कुछ गतिविधियों के रूप में समझा जा रहा है और तीसरा है व्यक्तिगत और सामाजिक गुण, जिसे जीवनोपयोगी गुण जैसे सदाचार, इमानदारी, सहयोग आदि को माना गया है। समग्र रूप में इसी को सतत एवं व्यापक मूल्यांकन माना जाता है।

ये कुछ बातें हैं जो शिक्षकों, अकादमिशियनों, व्यवस्थापकों की समझदारी से आती हैं। इस पूरी व्यवस्था में चुनौती यह है कि कैसे सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा को बेहतर समझा और आगे बढ़ाया जाए। यदि ये इतनी ही टुकड़ों में समझी और संप्रेषित की जाएगी तो लर्निंग लेवल में कोई बढ़ोत्तरी तो नहीं होगी वरन् ये परीक्षाएं कई बच्चों को शिक्षा के तंत्र से बाहर धकेल देंगी और विषमताओं को ही बढ़ाएंगी।

फैज़ कुरैशी : अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, भोपाल में कार्य करते हैं।

जरूरत है हुनरमंद शिक्षक की

✧ पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

यह लेख 5 सितम्बर, 2014 को शिक्षक दिवस पर भारत के प्रधानमंत्री द्वारा देश के छात्रों को दिए संबोधन पर केंद्रित है। इसमें लेखक ने देश की शैक्षिक परिस्थितियों पर टिप्पणी की है।

पांच सितम्बर 2014 एक यादगार दिन हो गया, जब कि 'शिक्षक दिवस' के संदर्भ में पहली बार भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी ने शिक्षकों से नहीं, सीधे छात्रों से संवाद किया। जिसे मीडिया ने दिखाया। माननीय प्रधानमंत्री जी के इस संवाद में भाग लेने दिल्ली के सर्व संपन्न स्कूलों के छात्र दिल्ली के मानिकशॉ ऑडोटोरियम पहुंचे थे और मीडिया ने भी देश के विभिन्न भागों से ऐसे ही चुने हुए कुछ सर्व संपन्न स्कूलों के छात्रों को भी इस संवाद से जोड़ा था। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि इस संवाद में सिर्फ अभिजात्य वर्ग के छात्र ही प्रधानमंत्री जी से रू–ब–रू हुए... जबकि महात्मा गांधी ने कहा था कि 'दिल्ली देश नहीं है, हमारा देश तो गांवों में बसता है।' गांवों के छात्र तो उस दिन टेलीविजन पर अपने प्रधानमंत्री से संवाद तो दूर, दर्शन भी नहीं कर पाए थे। क्योंकि अधिकांश गांवों में बिजली का संकट है, अन्य सुविधाएं भी यहां नहीं है। भारत में गांवों की संख्या 6,38,365 हैं और लाखों गांवों में बिजली नहीं है और जहां है तो वहां आती नहीं है। जबकि देश की 74 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। सन 2011 में एक अन्तर्राष्ट्रीय दल के सर्वे के अनुसार 17,282 बस्तियों में तो स्कूल ही नहीं हैं। 1,48,694 प्राथमिक शालाओं में भवन नहीं हैं। 1,65,742 शालाओं में पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था नहीं है। 4,55,561 शालाओं में शौचालय नहीं हैं और 1,14,531 शालाएं मात्र एक शिक्षक के सहारे हैं। क्या प्रधानमंत्री जी के संवाद से भारत की इन शालाओं के छात्र रू–ब–रू हुए? फिर यह भ्रम हम कैसे पाल लें कि हमारे प्रधानमंत्री जी ने देश के छात्रों से संवाद किए।

उल्लेखनीय है कि अवसर तो था 'शिक्षक दिवस' का परंतु माननीय प्रधानमंत्री जी ने शिक्षकों से रू–ब–रू होकर उनकी समस्याएं जानना गैर जरूरी समझा। छात्रों से संवाद करते हुए उन्होंने कहा था कि 'हमारे देश के अच्छे शिक्षक विदेशों में पहुंचें और वहां शिक्षण कार्य करें। तब हमारा देश जगत्गुरू हो जाए... वगैरह।' विचारणीय है कि जब हमारे देश में ही 1,14,531 स्कूल ऐसे हैं जहां मात्र एक शिक्षक ही भेड़–बकरियों की तरह पूरे दिन छात्रों को घेर कर रखने के लिए मजबूर है, वहां शिक्षण कार्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में शिक्षकों को विदेशों में निर्यात किया जाना स्वयं में जटिल प्रश्न ही कहा जाएगा। अस्तु.

सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश के लिए ही पर्याप्त शिक्षक जुटाए जाएं जिन्हें पर्याप्त वेतन एवं अन्य सुविधाएं मुहैया कराई जावें। इसके लिए अच्छे शिक्षक तैयार करने की पहल जरूरी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति

के अंतर्गत आज शिक्षक–प्रशिक्षण के नाम पर मात्र दो टकसालें हैं जहां से शिक्षक नाम के सिक्के ढाले जाते हैं। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर डिप्लोमा इन एज्यूकेशन (डी.एड.) और बैचलर ऑफ एज्यूकेशन (बी.एड.) जिसमें शिक्षक रूपी सिक्के धड़ाधड़ ढल रहे हैं। पूरे देश में टकसालें क्रमशः 'जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) और दो वर्षीय पाठ्यक्रम और पी.जी.बी.टी. कॉलेज एक वर्षीय पाठ्यक्रम के साथ संचालित हैं। मजे की बात यह है कि इन दोनों ही प्रशिक्षणों के पाठ्यक्रम से रचनात्मक गतिविधियां पूरी तरह नदारद हैं। डाइट में जो व्याख्याता रखे जाते हैं वे एम.एड. के डिग्रीधारी मात्र होते हैं, डिग्री के अतिरिक्त माननीय प्रधानमंत्री जी की मंशा अनुसार किसी प्रकार के हुनर से उनका किंचित कोई सरोकार नहीं होता और न ही ग्रामीण शालाओं की स्थानीय परिस्थितियों एवं समस्याओं के बारे में उन्हें कोई व्यावहारिक ज्ञान होता है। ये मात्र सैद्धांतिक विषय पढ़ा कर अपने दायित्व की इतिश्री मान लेते हैं। यहां तक कि डाइट में अध्यापन–अभ्यास जैसी गतिविधि समाप्त कर दी गई हैं। अगर कहीं अध्यापन–अभ्यास है भी तो यह कोरा कागजी कार्यवाही से पूरा किया जाता है। सोचिए कि जब शिक्षण कार्य और प्रशिक्षण कार्य के बीच अंतर की कोई सीमा रेखा मिटा दी जाए तो ऐसे प्रशिक्षणों का औचित्य क्या रह जाएगा?

हमारे प्रधानमंत्री जी ने अपने उस संवाद कार्यक्रम में दादा धर्माधिकारी का एक प्रेरक संस्मरण सुनाकर यह संदेश दिया कि डिग्री/डिप्लोमा से पहले शिक्षक का हुनरमंद होना बेहद जरूरी है। जब शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में क्रियात्मक गतिविधियां हैं ही नहीं तो भला केवल सैद्धांतिक विषय पढ़ा देने से कार्य कर सकने वाले हुनरमंद शिक्षक कैसे उपलब्ध हो सकेंगे? ज्ञातव्य है कि प्रशिक्षण में आने से पूर्व उन प्रशिक्षणार्थियों ने जो वांछित शैक्षिक योग्यता अर्जित की है उसमें उन्होंने भाषा, इतिहास–भूगोल, राजनीति शास्त्र, गणित–विज्ञान जैसे विषय पढ़े ही होंगे। अब प्रशिक्षण में उन्हीं विषयों को पुनः पढ़ाए जाने को महत्व क्यों दिया गया?

जबकि आवश्यकता इस बात कि है कि जो विषय–भाषा, विज्ञान, गणित वगैरह वे पढ़कर आए हैं, उन विषयों को वे अपने शिक्षकीय जीवन में छात्रों को रूचिकर ढंग से कैसे सिखाएंगे। जो छात्रों के लिए बोझिल न हो और छात्र क्रियाकलापों के साथ खेल–खेल में सीख सकें। अतः सिखाने की कला व्यावहारिक रूप में उन्हें सिखाई जावे। यही सब तौर–तरीके सिखाने के लिए अध्यापन अभ्यास कराया जाता था, वह भी डाइट की गतिविधियों से गायब है। जबकि सैद्धांतिक विषयों से पहले अध्यापन के तौर–तरीके व शिक्षण को रोचक बनाने की कला सिखाना अनिवार्य होना चाहिए। सैद्धांतिक ज्ञान और प्रायोगिक कौशल में जमीन–आसमान का अंतर होता है। कहा भी गया है कि जो पढ़ा वह तो विस्मृत हो जाता है और जो किया वह जीवन भर याद रहता है। इसीलिए महात्मा गांधी ने शिक्षा में 'समवाय' का मार्ग दिखाया। समवाय व केवल उत्पादक क्रियाकलापों, दस्तकारी एवं कुटीर उद्योगों के साथ कदम से कदम मिलाकर कंप्यूटर जैसे उपकरणों को भी समवाय का साधन बनाया जाए। ऐसा करने से हमारी टकसालों से हुनरमंद शिक्षक ढल कर निकलेंगे। यह कार्य केवल सैद्धांतिक विषयों के पीरियड पढ़ा देने मात्र से संभव नही होगा।

निश्चय ही हमें शिक्षक–प्रशिक्षणों के पाठ्यक्रमों में आमूल–चूल परिवर्तन करना होगा। इसके लिए सबसे पहली बात ध्यान देने योग्य यह है कि शिक्षक–प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षणार्थियों की चयन प्रक्रिया

में सुधार किया जावे। सैद्धांतिक विषयों की अंक सूची से मेरिट को आधार न बनाकर उसे गौण किया जाए। अन्य क्रियाशील विशेषताओं को महत्व दिया जाए। वर्तमान में लोग अपनी रुचि से शिक्षक–प्रशिक्षण में नहीं आते हैं। बेरोजगारों को जब अन्य कोई कार्य करने को नहीं मिला तो मजबूरी में वे लोग अपनी रुचि के बिना शिक्षक–प्रशिक्षण में आ जाते हैं। उन्हें न तो बच्चों में रुचि होती है न शिक्षण कार्य में, उनका मूल उद्देश्य तो नौकरी पाना होता है। अतः रुचि के विरुद्ध कार्य करने वालों से गुणवत्ता की आशा नहीं की जा सकती। वे तो प्रशिक्षण काल में भी खानापूर्ति करके अपना समय काटते हैं। जैसे भी हो उन्हें तो केवल डिग्री/डिप्लोमा चाहिए इसके लिए परीक्षा में नकल करने तक से वे नहीं चूकते। ऐसे ही लोग आज प्रशिक्षण संस्थाओं से शिक्षक के रूप में ढाले जा रहे हैं। अतः शिक्षक–प्रशिक्षण हेतु चयन की प्रक्रिया कुछ ऐसी हो कि जिसके प्रशिक्षण में वे ही लोग चयनित हों जिन्हें शिक्षण कार्य के प्रति आंतरिक लगाव हो।

शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक विषय पढ़ाने की तुलना में प्रायोगिक क्रियाकलापों को 80 प्रतिशत वेटेज दिया जाए। प्रशिक्षण में स्कूल–कॉलेजों की भांति कुछ घंटे रहकर प्रशिक्षणार्थी चले जाते हैं। यह प्रक्रिया पूरी तरह बंद हो। प्रशिक्षणार्थियों को छात्रावास में रहना अनिवार्य किया जाए। तब उनका प्रशिक्षण चौबीसों घंटे चलेगा। सामाजिक जीवन को पाठ्यक्रम में विशेष महत्त्व दिया जाए। उसका प्रशिक्षण चौबीसों घंटों के क्रियाकलापों में संपन्न होता चलेगा। प्रत्येक व्याख्याता का अपने सैद्धांतिक विषय के अलावा कोई न कोई समवाय से संबंधित क्रियाकलाप अनिवार्य किया जाए। ऐसा नहीं कि उन्होंने अपने विषय का एक पीरियड पढ़ा कर छुट्टी पा ली और कहा– दस्तकारी का काम क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर कराएगा। सामाजिक जीवन की गतिविधियां, सांस्कृतिक आयोजनों की गतिविधियां, छात्रावास प्रबंधन की गतिविधियां स्वयं प्रशिक्षणार्थियों को स्वतंत्र प्रभार के रूप में सौंप दी जाए। छात्रावासीय दिनचर्या एक आश्रम के रूप में संचालित हो। आश्रम कभी नौकर–चाकरों के भरोसे नही चलते। आश्रम में रहने वाले अपना कार्य स्वयं करते हैं। शिक्षक–प्रशिक्षण में स्वावलंबन को सर्वाधिक महत्व दिया जाए। क्रियाकलापों को समाजोपयोगी उत्पादन से जोड़ा जाए जो स्वावलंबन का आधार बने। ऐसा कुछ स्वरूप जब शिक्षक–प्रशिक्षण का उभर कर आएगा तो मेरा विश्वास है कि हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी का सपना साकार होगा। हमारे देश से अच्छे शिक्षक विदेशों में जाकर शिक्षण कार्य करेंगे और भारत जगत्गुरू कहलाने का अधिकारी अवश्य होगा।

यह तभी संभव होगा जब महात्मा गांधी के उत्पादक क्रियाकलाप, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की आश्रम प्रणाली और स्वामी विवेकानन्द का ज्ञानलोक इन तीनों का एकजुट समन्वय हमारे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में देखने को मिलेगा। क्या हमारी सरकारें और बड़े–बड़े नामधारी शिक्षा सलाहकार इन छोटी–छोटी बातों पर गंभीरतापूर्वक ध्यान देंगे? यही मेरा विनम्र प्रश्न है।

पं. गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी' : लगभग चालीस वर्षों तक बीटीआई (वर्तमान में डाइट) में शिक्षण कार्य किया। नई तालीम में समवाय पर गहरी पकड़। बुंदेली भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार एवं कवि। कुंडेश्वर, टीकमगढ़ (मध्यप्रदेश) में निवास।

Azim Premji University

DISCOVER YOUR INTERESTS.
EXPLORE THE UNUSUAL.

Azim Premji University invites applications to its
Undergraduate programme in the Humanities, Sciences & Social Sciences.

For more details, log on to azimpremjiuniversity.edu.in/ug
or write to us at ugadmissions@apu.edu.in

Azim Premji University
PES - IT Campus, Pixel Park, B Block, Electronics City, Hosur Road, Bengaluru – 560100

गणित की किताब

तूने अब फिसलना भले ही छोड़ दिया हो
पर फिसलपट्टी ने
तेरा साथ नहीं छोड़ा है
वह तेरी गणित की किताब में
वर्गमूल का चिह्न हो गई है

कभी जमीन छूता
कभी आसमान होता–
सी सॉ
गुणा का चिह्न बन गया है

और हर वक्त टप्पे खाती
लुढ़कती तेरी गेंद
अंकों को अनंत तक
दौड़ाने में दक्ष हो गई है
अब शून्य कहलाती है

तेरे आईसक्रीम का कोन
बदल गया है शंकु में

तेरे चित्रों के सारे पहाड़
अब त्रिभुज बन गए हैं
और उगता हुआ सूरज
वृत्त के रूप में पूरा उग चुका है

हेमंत देवलेकर
स्कूली शिक्षा में कला और नाटक से सरोकार।
उज्जैन में निवास।

विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर की ओर से प्रकाशक व मुद्रक : रियाज़ ए. तहसीन, पता : विद्या भवन सोसायटी, डा. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा, उदयपुर, राजस्थान से प्रकाशित एवं संजय प्रिन्टर्स, 71, महिला मंडल स्कूल के पास, मुखर्जी चौक, उदयपुर, (राज.) से मुद्रित, संपादक : आदेश कुमार सिंह।